Chap-1

: अध्याय-एक :

: विषय-प्रवेश :

: अध्याय - एक :

: विषय-प्रवेश :

प्रास्ताविक :

"उपन्यास" यथार्थ की विधा है । दूसरे शब्दों में कहें तो "यथार्थधर्मिता" ही उपन्यास का प्राण-तत्त्व है । इसका अर्थ यह नहीं कि दूसरी साहित्यिक विधाओं और कलाओं में यथार्थ का आकलन नहीं होता है । वस्तुतः साहित्य की प्रत्येक विधा और कला-मात्र यथार्थ की जमीन पर स्थित है । यथार्थ के बिना तो किसीका गुजारा नहीं । अंतर यह है कि "उपन्यास" के लिए यथार्थ एक अनिवार्य शर्त है । केवल जैनेन्द्र को छोड़कर प्रायः सभी हिन्दी के आलोचकों तथा सर्जकों ने उपन्यास में यथार्थ के महत्त्व

को रेखांकित किया है । [1] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने तो यहां तक कह दिया कि " उपन्यास में दुनिया जैसी है वैसी चित्रित करने का प्रयास रहता है । " [2] यहां " प्रयास" शब्द ध्यानार्ह है । कुछ लोग मानते हैं कि यथार्थ के चित्रण में क्या कला है । परंतु यथार्थवाद के अध्येता यह भलीभांति जानते हैं कि यथार्थ का चित्रण एक टेढ़ी खीर है । एक बार काल्पनिक चित्रण में अधिक दिक्कत नहीं आती , क्योंकि वह काल्पनिक है और कल्पना को कोई आकार-प्रकार नहीं होता । अतः वहां आपको कोई घेर नहीं सकता । जबकि यथार्थवाद के चित्रण में तो पग-पग पर दिक्कत होती है । कोई सवाल खड़ा कर सकता है कि यथार्थतः ऐसा नहीं ऐसा होना चाहिए । अभिप्राय यह कि उपन्यास यथार्थ की कला है , अतएव एक मुश्किल कला है । और यदि किसी कला का जुड़ाव "यथार्थ" से है , तो उसका जुड़वा अवश्यमेव सामाजिक समस्याओं से भी रहेगा । फलतः कहा जा सकता है कि समस्याओं से उपन्यास का संबंध चोली-दामन जैसा है । प्रेमचंद के उपन्यासों को इसीलिए कई आलोचक समस्यामूलक उपन्यास कहते हैं । यदि सूक्ष्म अवगाहन किया जाए तो प्रयोगवादी या कलावादी उपन्यासों में भी कोई-न-कोई समस्या तो मिलेगी ही । दूसरे समस्याओं को कोई एक रूप नहीं होता । समस्या सामाजिक भी हो सकती है , पारिवारिक भी , आर्थिक भी और मनोवैज्ञानिक भी हो सकती है । कई बार एक ही समस्या भी कई प्रकार की समस्याओं से अनुस्यूत होती है । उदाहरणतया धर्मान्तरण की समस्या धार्मिक-सामाजिक समस्या तो है ही , वह मनोवैज्ञानिक समस्या भी हो सकती है । "धरती धन न अपना " का नंदसिंह पहले सीख और बाद में ईसाई धर्म अंगिकार करता है , क्योंकि उसे "चमार" शब्द से नफरत है और सीख होने के बावजूद उपन्यास में एक स्थान पर मुंशी चौधरी उसे कहता है — " चमारा तूने क्या भांग पी रखी है ? " [3] इसी उपन्यास का एक पात्र

सन्तसिंह इसी नंदसिंह के संदर्भ में कहता है — " सिक्ख बन जाने से का यह मतलब तो नहीं कि वह चमार नहीं रहा । धर्म बदलने से जात तो नहीं बदल जाती । " [4] नंदसिंह अपने से ईसाई हो जाने के फायदों में सबसे पहले इसको गिनाता है कि सबसे बड़ा फायदा तो यह हुआ कि अब हम "चमार" नहीं रहे । अभिप्राय यह कि समस्या बहुमुखी और बहुआयामी होती है । और यह समस्या उपन्यास की कथावस्तु में रीढ़ की हड्डी के मानिंद होती है । यहाँ औपन्यासिक यथार्थ के संदर्भ में समस्या की बात को हमने इसीलिए उठाया है कि प्रस्तुत प्रबंध में मानव-जीवन से संलग्नित ऐसी ही एक समस्या को हमने उठाया है । हमारे समाज में प्राचीन काल से वेश्या-जीवन की समस्या उपलब्ध होती है । देह का या खून का यह सौदा मानव-संस्कृति और मानव-सभ्यता जितना ही पुराना है । नवजागरण के पश्चात् आधुनिक काल में जब हिन्दी उपन्यास का आविर्भाव हुआ तो तत्कालीन समाज की अनेक समस्याओं के साथ वेश्याजीवन की समस्या पर भी उपन्यासकारों ने कई उपन्यास लिखे । यह एक सर्वकालीन और सर्वदेशीय समस्या है । उसका स्वरूप बदलता रहा है । अतः उपन्यास के आरंभ-काल से लेकर समकालीन उपन्यास तक के उपन्यासकारों ने इस संवेदनशील समस्या को अपने उपन्यासों में उभारा है । प्रस्तुत शोध-कार्य में हमारा उपक्रम हिन्दी उपन्यास में इस समस्या का अवगाहन, आकलन और विश्लेषण करने का रहा है ।

उपन्यास और यथार्थ :

उपर्युक्त विवेचन में हम स्पष्ट कर चुके हैं कि समस्या का उपन्यास के यथार्थ से गहरा संबंध है । परिणामतः यथार्थवादी उपन्यासों में किसी-न-किसी प्रकार की समस्या अवश्य रहती है ।

"यथार्थवाद" पर विचार प्रस्तुत करने से पूर्व यदि हम उपन्यास की कतिपय परिभाषाओं पर दृष्टिपात करें तो उपन्यास और यथार्थ के संबंध को शायद बेहतर समझ सकते हैं :—

/1/ "ए फिक्शनल प्रोज टेल आर नेरेटिव आफ कन्सीडरेबल लेन्थ, इन व्हिच केरेक्टर्स एण्ड एक्शन्स प्रोफेसिंग टु रीप्रेजेण्ट थोज़ आफ रियल लाईफ आर पोर्ट्रेइड इन ए प्लोट." [5]

अर्थात् उपन्यास एक प्रकार का प्रकथनात्मक गद्य है जिसमें अपेक्षाकृत विस्तार के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों और घटनाओं को एक व्यवस्थित कथानक के अंतर्गत प्रस्तुत किया जाता है। यहाँ "व्यवस्थित कथानक" से तात्पर्य कार्य-कारण संबंध-युक्त कथानक है।

/2/ "द नोवेल इज़ नोट मियरली ए फिक्शनल प्रोज. इट इज़ ए प्रोज आफ मेन्स लाईफ, द फर्स्ट आर्ट टु अटेम्प्ट, टु टेक द व्होल मेन एण्ड गीव हिज़ एक्सप्रेशन." [6] अर्थात् उपन्यास प्रकथनात्मक गद्य मात्र नहीं है, वह मानव-जीवन का गद्य है। उपन्यास वह पहली कला है जिसमें मनुष्य को उसके समग्र रूप में लिया गया है। और वह मानव-जीवन की भावनाओं को अभिव्यक्ति देता है। राल्फ फोक्स महोदय की परिभाषा में दो बातों पर विशेष जोर है। एक तो यह कि उपन्यास मानव-जीवन का गद्य है। यहाँ उनका संकेत शायद मनुष्य द्वारा प्रयुक्त भाषा अर्थात् स्पोकन लैंग्वेज से है। दूसरी और बहुत ही महत्वपूर्ण बात यह है कि उपन्यास वह पहली साहित्यिक विधा है जिसमें मनुष्य को उसके समग्र रूप में प्रस्तुत किया जाता है। "समग्र रूप" का अर्थ यहाँ मनुष्य का वास्तविक रूप, मनुष्य जैसा भी है, उसका यथातथ्य स्वरूप। वह अच्छा-बुरा जैसा भी है। अच्छे से अच्छे मनुष्य में कुछ मानव-सहज कमजोरियाँ पाई जाती हैं और बुरे से बुरे मनुष्य में भी कुछ अच्छाइयाँ होती हैं। यह है मनुष्य का

वास्तविक रूप या समग्र रूप ।

/3/ " द नोवेल इज़ टायपिकली ए रीप्रेजेण्टेशन आफ ह्युमन एक्सपीरिअन्स , वेधर लिबरल आर आईडियल , एण्ड थेर-फोर इनएविटेब्ली ए कोमेण्ट अपोन लाईफ . "[7] अर्थात् उपन्यास विशेष रूप से मानव-जीवन के अनुभव का चित्रण है । यह चित्रण स्वतंत्र या आदर्शवादी प्रकार का हो सकता है और इसलिए ही हम उपन्यास को मानव-जीवन पर की गई टिप्पणी कह सकते हैं । यहाँ भी हम देख सकते हैं कि प्रकारान्तर से उपन्यास में यथार्थ के चित्रण पर जोर दिया गया है ।

/4/ " ए नोवेल इज़ , इन इट्स ब्रोडेस्ट डेफिनिशन , ए पर्सनल , ए डायरेक्ट इम्प्रेशन आफ लाईफ . "[8] अर्थात् उपन्यास उपन्यास उसकी व्यापकतम परिभाषा में जीवन का वैयक्तिक एवं प्रत्यक्ष अनुभव-चित्रण है । यहाँ हेनरी जेइम्स ने दो बातों को विशेषतया रेखांकित किया है । एक- उपन्यास में वैयक्तिक अनुभव काम आता है । दूसरे के अनुभव को आधार बनाकर उपन्यास लिखना उपयुक्त नहीं है , क्योंकि दूसरे का अनुभव दूसरे का है , उसमें वह यथार्थता नहीं आ सकती । दो - उसमें प्रत्यक्ष अनुभव काम आता है , परोक्ष या परागत (सैकण्ड-हैण्ड) अनुभव नहीं । ये इनमें दोनों बातें यथार्थ के विशेष आग्रह के कारण है । उदयशंकर भट्ट के उपन्यास " सागर , लहरें और मनुष्य " बरसोवा के मछुआरों के जीवन का चित्रण मिलता है और उसके यथातथ्य चित्रण के लिए लेखक एक लम्बा अरसा वहाँ उन लोगों के बीच रहे थे । शैलेश मटियानी के मुंबई के परिवेश पर आधारित उपन्यासों में वहाँ का यथार्थ चित्रण मिलता है , कारण यही है कि उस जीवन का मटियानीजह को प्रत्यक्ष एवं व्यक्तिगत अनुभव था । लेखक स्वयं उन स्थितियों से रूबरू हुए हैं । "न्यु ब्रेव वर्ल्ड " में हक्सले ने मैक्सिको शहर के परिवेश को लिया है । उसके यथार्थ चित्रण के लिए हक्सले ने उस शहर की अनेक बार मुलाकात ली थी ।[9]

/5/ " उपन्यास मनुष्य के ~~xxxxxxx~~ वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है । " 10 डा. श्यामसुंदरदास की इस परिभाषा में भी "वास्तविकता" या "यथार्थ" पर विशेष तवज्जो दी गई है । इसमें "कथा" शब्द का सविशेष महत्व है । उपन्यास के मूल में कोई कथा होती है और कथा तो स्वभावतः काल्पनिक होती है । परन्तु उपन्यास की यह काल्पनिक कथा मनुष्य के वास्तविक जीवन से गहरा ताल्लुक x रखती है । यहाँ तो उपन्यास की कथा उस पुरानी कथा से बिलकुल अलग पड़ती है । जहाँ पुरानी कथा नितान्त वायवी होती थी, वहाँ यह नयी कथा - नोवेल — मनुष्य के वास्तविक जीवन को केन्द्र में रखकर चलती है ।

/6/ " मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूं । मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है । " 11 मुंशी प्रेमचन्दजी द्वारा दी गयी यह परिभाषा भी उपन्यास के यथार्थोन्मुखी स्वरूप को xxx उद्घाटित करती है । प्रेमचन्दजी उपन्यास में मानव-चरित्र को प्रस्तुत करने की बात करते हैं । यहाँ "चित्र" शब्द भी गौरतलब है । "चित्र" एक प्रयत्न है, कोशिश है और इसलिए किसी भी व्यक्ति का हूबहू चित्र खींचना मुश्किल है । लेखक भी एक कलाकार है और वह उसको खींचने की कोशिश करता है । यह कोशिश जितनी ईमानदार होगी, उतनी ही वह यथार्थ के करीब होगी ।

/7/ " उपन्यास कार्य-कारण श्रृंखला में बंधा हुआ वह गद्य कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव-जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है ।" 12 डा. गुलाबराय की यह परिभाषा "न्यू इंग्लिश डिक्शनरी" की परिभाषा से काफी मेल खाती है । इसमें वे मानव-जीवन के सत्य को इस प्रकार उद्घाटित

करने की बात करते हैं कि उसका स्वरूप रसात्मक रहे । दूसरे शब्दों में गुलाबराय अपनी परिभाषा में "रस" को भी जोड़ते हैं । उपन्यास की कथा में "रस" तो पड़ना ही चाहिए, अन्यथा उसे कौन पढ़ेगा ? उपन्यास में यह "रस" कथा-संघटन से आता है ।

/8/ " यह शब्द (उपन्यास) "उप" (समीप) तथा "न्यास" (थाती) के योग से बना है, जिसका अर्थ हुआ (मनुष्य के) निकट रखी हुई वस्तु, अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है ।"[13] साहित्यकोश की इस परिभाषा में उपन्यास का जीवन से सामीप्य निरूपित किया गया है । उपन्यास को पढ़कर हमें लगना चाहिए कि यह हमारे ही जीवन की कोई वस्तु है । अर्थात् जमीनी हकीकत को यहाँ भी नकारा नहीं गया है ।

/9/ उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य है । इसमें मानव-जीवन और मानव-चरित्र का चित्रण उपस्थित किया जाता है । वह मनुष्य के जीवन और चरित्र की व्याख्या करता है ।"[14] यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि वाजपेयीजी उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य कहते हैं । इसकी उपयुक्तता दो-तीन दृष्टियों से है । एक तो जिस प्रकार महाकाव्य पद्य की एक बृहद्काय रचना होती है, ठीक उसी प्रकार उपन्यास गद्य की एक बृहद्काय रचना होती है । जिस प्रकार महाकाव्य में जीवन और जगत का विस्तृत चित्रण मिलता है, ठीक उसी तरह उपन्यास में भी जीवन और जगत का यथार्थ चित्रण उपलब्ध होता है । जिस प्रकार महाकाव्य में युग की तासीर उभरकर आती है, ठीक उसी तरह महाकाव्यात्मक उपन्यासों में (एपिक नावेल) युग-विशेष उभरकर बोलता है । दूसरी बात वाजपेयीजी ने यह कही है कि उपन्यास में "मानव-जीवन और मानव-चरित्र का चित्रण होता है ।" तीसरी बात उसीके अनुसंधान में है कि " वह (उपन्यास) मनुष्य के जीवन और चरित्र

की व्याख्या करता है । " ये सारी बातें उपन्यास की यथार्थधर्मिता की ओर इशारा करती हैं ।

/10/ " उपन्यास में दुनिया जैसी है वैसी चित्रित करने का प्रयास रहता है । " [15] इस परिभाषा का उल्लेख हम पूर्ववर्ती पृष्ठ (पृष्ठ-003) में भी कर चुके हैं । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी की बात बिलकुल दीये की तरह साफ है । उपन्यास-विषयक तमाम परिभाषाओं का निचोड़ इस एक सरल-से वाक्य में आकर सिमट गया है ।

/11/ " उपन्यास मनुष्य के सामाजिक, वैयक्तिक अथवा दोनों प्रकार के जीवन का रोचक साहित्यिक रूप है, जो प्रायः एक कथा-सूत्र के आधार पर निर्मित होता है ।" [16] डा. एस.एन. गणेशन द्वारा प्रतिपादित यह परिभाषा उपन्यास के दोनों प्रकार के यथार्थ — सामाजिक यथार्थ और चैतसिक यथार्थ — पर प्रकाश डालता है । सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का चित्रण अधिक और सघन होता है, तो चरित्र-प्रधान और मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में वैयक्तिक यथार्थ पर विशेष बल दिया जाता है । इसका अर्थ यह कतई नहीं कि सामाजिक उपन्यासों में वैयक्तिक यथार्थ होता ही नहीं और मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ एक सिरे से गायब रहता है । वस्तुतः यहां भेद परिमाण को लेकर है । क्या "गोदान" में वैयक्तिक यथार्थ नहीं है ? क्या "त्यागपत्र" में सामाजिक यथार्थ नहीं है ? बल्कि "त्यागपत्र" की नायिका मृणाल तो बात-बात में समाज का ध्यान रखती है । उसके बहुत से क्रिया-कलापों को समाज की गतिविधियां ही परिचालित करती हैं । यथा- " विवाह की ग्रन्थि दो के बीच की ग्रन्थि नहीं है, वह समाज के बीच की भी है । चाहने से भी ही वह क्या टूटती है ? विवाह भावुकता का प्रश्न नहीं, व्यवस्था का प्रश्न है ।" [17] तथा " तुम (प्रमोद) परवाह (समाज की) न करो भाई, तो चल सकता है ; लेकिन मैं तो ऐसा नहीं कर सकती कि परवाह न करूं । मै समाज को तोड़ना-

फोड़ना नहीं चाहती हूँ । समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे ? या कि किसके भीतर बिगड़ेंगे ?" [18] ऐसे तो कई विचार आपको इस उपन्यास में मिल सकते हैं । दूसरी एक बात जो इस ~~xxxxx~~ परिभाषा में कही गई है वह यह कि "उपन्यास" एक कथा-सूत्र (थीम) के आधार पर तैयार होता है । जैसे "गोदान" के थीम की बात करें तो वह भारतीय कृषक-समाज के चतुर्मुखी शोषण की बात करता है । "त्यागपत्र" का थीम यह है कि व्यक्ति जहाँ भी "सत्य" को लेकर आगे बढ़ता है, उसे पग-पxxxxग पर ठोकरें खानी पड़ती हैं । आखिर मृणाल का कसूर क्या था ? अपने पति को "ईमानदारी" के तहत अपने विवाह-पूर्व प्रेम की बात वह बता देती है । और यह प्रेम भी किस प्रकार का है । किशोर वय का केवल "प्लेटोनिक" प्रकार का प्रेम जिसमें शरीर या वासना को कोई स्थान नहीं है । इसी एक बात से उसका जाहिल पति उसे "कुलटा" करार देते हुए उसके साथ अमानवीय व्यवहार करता है । इसीलिए डा. रणवीर रांग्रा उपन्यास को (त्यागपत्र को) सूक्ष्म व्यंग्य का उपन्यास कहते हैं । अभिप्राय यह कि उपन्यास किसी-न-किसी प्रकार की "थीम" को अनुसरित करता है और यह "थीम" ही उसके सामाजिक सरोकारों को उजागर करती है ।

/12/ " शृंखलाबद्ध कथानक द्वारा सरल तथा गूढ़ मानव-चरित्रों का निर्माण, उनकी समस्याओं, सक्रिय गतिविधियों तथा सामाजिक एवं मानसिक संघर्षों से युक्त उसके स्वभावों एवं मन की महती शक्तियों का पूर्ण जीवित एवं यथार्थ चित्र कल्पना के द्वारा जिस साहित्य-रूप में प्रस्तुत किया जाता है, उसे उपन्यास कहते हैं ।" [19] इस परिभाषा में कई बातें कही गई हैं । यथा — 1. उसका कथानक कार्य-कारण शृंखलाबद्ध होता है, 2. उसमें सरल तथा गूढ़ मानव-चरित्रों का निर्माण किया xxxxxxxx जाता है, 3. उसमें मानव-चरित्रों

की समस्याओं और उनकी सक्रिय गतिविधियों का आलेखन होता है , 4. उसमें सामाजिक एवं मानसिक संघर्ष या द्वन्द्व रहता है , 5. उसमें मनुष्य-स्वभाव और उसके मन की तमाम शक्तियों का यथार्थ आकलन किया जाता है और यथार्थ का यह आकलन "कल्पना" के द्वारा किया जाता है । दूसरे शब्दों में मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा उपन्यास है । डा. त्रिभुवनसिंह की उपर्युक्त परिभाषा में जितनी भी बातें कही गई हैं वे उसके स्वरूप की यथार्थता को उद्घाटित करती हैं ।

/13/ " उपन्यास एक कथात्मक गद्य-विधा है , जिसमें अपेक्षाकृत विस्तार के साथ सामाजिक या वैयक्तिक या दोनों प्रकार के यथार्थ को , उसके यथार्थ परिवेश में , वास्तविक घटनाओं और ~~xxxx~~ मानव-चरित्रों ~~xx~~ के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है और उसमें आद्यन्त उसके लेखक की एक निश्चित विचारधारा या जीवन-दर्शन प्रतिबिंबित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है ।" [20] यह परिभाषा मेरे निर्देशक डा. पारुकान्त देसाई की है , जिन्होंने स्वयं उपन्यास पर शोध-कार्य किया है और अद्यावधि कई ~~xxxx~~ शोध-छात्रों को उपन्यास के विभिन्न विषयों पर ~~xxxx~~ शोध-कार्य करवाया है । उनकी जो परिभाषा है इसमें हमें निम्नलिखित तथ्य उपलब्ध होते हैं — 1. उपन्यास एक कथात्मक गद्य-विधा है , 2. उसका फलक अपेक्षाकृत विस्तृत होता है , 3. उसमें सामाजिक वा वैयक्तिक या दोनों प्रकार का यथार्थ चित्रित होता है , 4. उसके परिवेश-निर्माण में यथार्थ का ~~xxxx~~ सविशेष ध्यान रखा जाता है , 5. उसमें लेखक की विचारधारा (पोइण्ट आफ व्यू) प्रतिबिम्बित होती है । ये सारी बातें भी उपन्यास की यथार्थ-धर्मिता को रेखांकित करने वाली है ।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं का यदि अवगाहन किया जाए तो उपन्यास के व्यावर्तक लक्षण के रूप में उसकी यथार्थधर्मिता ही

उभरकर सामने आती है । डा. देसाई ने अपने शोध-प्रबंध में "साहित्यिक उपन्यास की पहचान" शीर्षक के अंतर्गत जिन अभिलक्षणों की चर्चा की है उनमें सर्वप्रथम "यथार्थ की पहचान " को बताया है । 21 डा. देवीशंकर अवस्थी द्वारा संपादित ग्रन्थ "विवेक के रंग " में आधुनिक हिन्दी साहित्य की मानक रचनाओं की सम्यक् समीक्षा प्रस्तुत की है । उसमें जहां उपन्यासों की चर्चा है, उस उपविभाग को "यथार्थ की पहचान " ही नाम दिया गया है । 22 गुजराती के लब्ध-प्रतिष्ठ समालोचक प्रो. यशवंत शुक्ल भी उपन्यास कार के अनुभव की ईमानदारी पर विशेष बल देते हैं ।23 उपन्यास में संभावितता (प्रोबेबीलिटी) का गुण होना अनिवार्य है और यह गुण यथार्थ की सही पकड़ से ही आता है । उत्कृष्ट और साहित्यिक स्तर के उपन्यासों को पढ़ते समय हम जीवन से पलायन नहीं करते, बल्कि जीवन को और भी भलीभांति और गहराई से जानने लगते हैं । कई बार जीवन में जिन तंतुओं को नहीं छेड़ा जाता, महान साहित्य उन तंतुओं को छेड़ता है ।

हिन्दी साहित्यकोश भाग-1 में "यथार्थवाद " के संदर्भ में कहा गया है --" वस्तुतः यथार्थवाद हिन्दी साहित्य के लिए नया नहीं है । वह सुधारक साहित्य का प्रथम अस्त्र है । किसी भी सामाजिक स्थिति के प्रति विद्रोह करते समय साहित्यकार उसका यथार्थवादी चित्र उपस्थित करता है । इस प्रकार वह अपने पाठक के मन में उस आक्रोश को जन्म देना चाहता है, जिसके बिना किसी भी सुधार, परिवर्तन अथवा क्रान्ति की कल्पना नहीं की जा सकती । कबीर एक प्रकार से हिन्दी के प्रथम यथार्थवादी कवि हैं ।" 24 कबीर ने समाज की पोल खोलने में और ढोंग-ढकोसलों का पर्दाफाश करने में किसी प्रकार की कमी नहीं बरती । परन्तु इस यथार्थ-दृष्टि के साथ कबीर में भक्ति भी है, जैसे प्रेमचन्द में मानवीय आस्था ।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं में से एकाध को छोड़कर लगभग सभी परिभाषाओं में उपन्यास की यथार्थधर्मिता को लक्षित किया गया है । उपन्यास में "वेश्या-समस्या" उसके सही परिप्रेक्ष्य में चर्चित हुई है , उसके पीछे उसकी यही यथार्थधर्मिता कार्य करती है ।

उपन्यास और मानवीय समस्याएं :

हिन्दी उपन्यास का उद्भव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ है । हिन्दी का प्रथम उपन्यास "भाग्यवती" (पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी) सन् 1878 में प्रकाशित हुआ था । कुछ इतिहासकारों के मतानुसार हिन्दी का प्रथम उपन्यास "परीक्षागुरु " है , जिसके लेखक लाला श्रीनिवासदास है । "परीक्षागुरु " का प्रकाशन वर्ष सन् 1882 है । अन्य भारतीय भाषाओं में भी उपन्यास का आविर्भाव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के आसपास ही माना जाता रहा है । बंगला का प्रथम उपन्यास "आलालेर घरेर दुलाल" सन् 1857 में प्रकाशित माना जाता है । "आलालेर घरेर दुलाल" का अर्थ होता है "बड़े घर का बेटा " । इसके लेखक श्री टेकचन्द ठाकुर हैं । उसके कुछ महीनों बाद लेकिन उसी वर्ष में मराठी का प्रथम उपन्यास "यमुना पर्यटण " प्राप्त होता है , जिसके लेखक बाबा पदमनजी हैं । सन् 1866 में नंदशंकर तुळजाशंकर मेहता द्वारा प्रणीत " करणघेलो" उपन्यास हमारे समक्ष आता है , जिसे गुजराती साहित्य के इतिहास में उसका प्रथम उपन्यास माना जाता है । इसी तरह उडिया उपन्यास "भीमाभूयाँ" , तेलुगु उपन्यास "महाश्वेता" , मलयालम उपन्यास "पुलेली कुंचु " , असमिया उपन्यास "कामिनीकांतार चरित्र " , तमिल उपन्यास " प्रतापमुदलियार चरितम् " आदि उपन्यास क्रमशः सन 1866 , 1867 , 1882 , 1877 , 1869 में हमारे सामने आते हैं । [25]

यहां हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में उपन्यास के आविर्भाव काल की ईषत् चर्चा हम इस हेतु कर रहे हैं कि यह लगभग वही समय है जो भारतीय नव-जागरण का है, जिसे कुछ इतिहासकार भारतीय उत्क्रान्ति {Indian Renaissance} कहते हैं। हिन्दू समाज एक नयी करवट ले रहा था और परंपरागत रूढ़ियुक्त संकुचित विचारों पर नये सिरे से विमर्श शुरू हो गए थे, जिसके कारण भारतीय समाज में परिव्याप्त अनेक समस्याएं मुंहबाएं हो रही थीं। साहित्य इन समस्याओं के निरूपण हेतु कोई साहित्यिक प्रकार {form of Literature} की टोह में था कि उसके सामने पाश्चात्य साहित्य-जगत की यह उर्वरक विधा सामने आ गयी। वस्तुतः पश्चिम में भी "नावेल" का आविर्भाव तब हुआ था, जब उत्क्रान्ति {Renaissance} के कारण वहां का समाज एक जटिल स्वरूप अख्तयार कर रहा था। वहां भी समाज की उस जटिलता को रूपायित करने के लिए किसी नयी विधा की तलाश थी। और तब "नावेल" जैसी नयी विधा उनके सामने आयी। वस्तुतः "नावेल" का अर्थ "नया" ही होता है। यह भी एक समाजशास्त्रीय अनुभव है कि समाज जब जटिल {Comlex} रूप धारण करने लगता है, तब उसके सामने अनेक समस्याएं उपस्थित होती हैं।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि भारतीय समाज में नयी-नयी समस्याओं का उद्भव काल और उपन्यास का आविर्भाव काल प्रायः समानान्तर है। इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि ये समस्याएं तभी उत्पन्न हुई थीं और पहले नहीं थीं। समस्याएं तो आदि-अनादि काल से चली आ रही थीं, लेकिन उन पर ध्यान नव-जागरण के समय गया, क्योंकि यह वही समय है, जब अनेक नये विमर्श उत्क्रान्तित हो रहे थे। धर्म और शास्त्र को लेकर हमारे यहां स्त्रियों और पिछड़ों को सहस्त्राधिक वर्षों से छला और दला गया है। अंग्रेजों के कारण हमारे देश को अन्य राजनीतिक या आर्थिक नुकसान हुआ होगा, परन्तु एक लाभ भी हुआ

और वह यह कि एक नयी चेतना , एक नयी विचार-दृष्टि विचारवन्त विद्वान लोगों के सामने आयीं ।

उपन्यास की कथावस्तु की विवेचना के दौरान औपन्यासिक आलोचकों ने उपन्यास की कथावस्तु के जिन गुणों की चर्चा की है, उनमें एक गुण कथावस्तु की मौलिकता या नवीनता है । कथावस्तु में यह मौलिकता या नवीनता दो तरह से आती है : एक तो तब जब समाज में नवीन सामाजिक , राजनीतिक , वैज्ञानिक , तकनीकी समस्याएं ४ परिस्थितियों का निर्माण होता है , तब लेखकों को , विशेषतः कथाकारों और उपन्यासकारों को नये विषय मिल जाते हैं । जब कोई नये विचार-प्रवाह आते हैं , तब भी औपन्यासिकों को नये विषय मिल जाते हैं , जैसे यथार्थवाद , अस्तित्ववाद , मार्क्सवादी चिंतन , मनोवैज्ञानिक आविष्कार आदि-आदि । इन सबके कारण लेखकों को नये विषय मिल जाते हैं ।

दूसरे उपन्यास में मौलिकता या नवीनता कथानक के प्रस्तुतिकरण या शिल्प के कारण भी आती है । एक ही सत्य या तथ्य को कहने के कई-कई ढंग होते हैं । कुछेक उपन्यासों की सफलता का मुख्य आधार उनके इस नये रूपबन्ध या फार्म के कारण भी है । इयान वाट महोदय ने इस संदर्भ में कहा है -- " सिन्स द नोवेलिस्ट प्रायमरी टास्क इज टु कन्वे द इम्प्रेशन आफ फाइडेलिटी आफ ह्युमन एक्सपीरिएन्स , अटेन्शन टु एनी प्रीएस्टाब्लिश्ड फारमल कन्वेनशन केन ओन्ली एनडेन्जर हिज सक्सेस . " 26 अर्थात् मानव-अनुभव की सम्पूर्णता को ईमानदारी से सम्प्रेषित करना प्रत्येक उपन्यासकार का प्रथम कर्तव्य होता है , अतः पूर्व-स्थापित कोई भी रूढ़ि या तरीका उसकी सफलता के लिए खतरा है । "मैला आंचल " , "राग दरबारी " , " काशी का अस्सी " प्रभृति उपन्यासों की सफलता के पीछे इन-इन उपन्यासों में नये फार्म की तलाश भी रही है ।

किन्तु हम यहाँ जिस मुद्दे की पड़ताल में लगे हैं — उपन्यास और मानवीय समस्याएँ — उसमें पहला जो तरीका बताया है, वह अधिक समीचीन और कारगर है, अर्थात् नवीन परिस्थितियों का उद्भव औपन्यासिकों को नये विषय देते हैं। "नवजागरण-काल" में अनेक नवीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक स्थितियाँ उद्भवित हुईं, जिनके कारण उस काल-खण्ड के औपन्यासिकों को नारी-शिक्षा की समस्या, दहेज-समस्या, अनमेल ब्याह की समस्या, वृद्ध-विवाह की समस्या, शिशु-विवाह की समस्या, विधवा-विवाह की समस्या, अस्पृश्यता की समस्या, दलितों के मंदिर-प्रवेश की समस्या, किसान-मजदूरों के शोषण की समस्या जैसी नाना समस्याएँ सामने आयीं; जिन समस्याओं ने उपन्यासकारों को "परीक्षा गुरु", "भाग्यवती", "निर्मला", "सेवासदन", "गबन", "कर्मभूमि" "गोदान" जैसे उपन्यास दिए।

भारत के स्वाधीनता-आंदोलन और उसमें महात्मा गांधी के प्रवेश के साथ ही उपन्यासकारों को अनेक नये प्लाट मिल गए। प्रेमचंद के "प्रेमाश्रम", "कायाकल्प", "रंगभूमि", "कर्मभूमि", "गोदान" आदि उपन्यासों में हमें स्वाधीनता-संग्राम की गतिविधियाँ किसी-न-किसी रूप में मिल जाती हैं। फ्रान्स की क्रान्ति, रूस की क्रान्ति तथा मार्क्सवादी विचारधारा का प्रारंभ हमें "गोदान" में उपलब्ध होता है। "गोदान" का मेहता मार्क्सवाद की बात करता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में हमें तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियाँ तथा वैश्विक-प्रवाह साफ-साफ दृष्टिगोचर होते हैं।

स्वाधीनता-प्राप्ति और देश का विभाजन ये दो बड़ी घटनाएँ हैं। उनका चित्रण हमें "झूठा सच" (यशपाल), "प्रश्न और मरीचिका" (भगवतीचरण वर्मा), "तेज पंखुड़ी की तेज धार" (शमशेरसिंह नरूला) जैसे उपन्यासों में उपलब्ध होता है। हिन्दू-मुस्लिम कौमी दंगों-फसादों का बड़ा ही सूक्ष्म व कलात्मक चित्रण भीष्म साहनी के उपन्यास "झूठी xxxx" "तमस" हमें प्राप्त होता है। दलितों की समस्या पर

जगदीशचन्द्र कृत " धरती धन न अपना " उपन्यास हमें प्राप्त होता है । आजादी के बाद भ्रष्टाचार की अमरबेल दिन-ब-दिन फल-फूल रही है । इसीको लेकर "राग दरबारी" , "नेताजी कहिन " , " थपेल " जैसे उपन्यास आ रहे हैं । आजादी के पश्चात् राजनीति की काली आंधी ने हमारे गाँवों को भी अपनी चपेट में ले लिया है । अब हमारे गांव " अहा ! ग्राम्य जीवन भी क्या है ! " वाले नहीं रहे हैं, गांव के लोग भी अब धूर्त, चालाक और कांइयां हो गए हैं । वे अब शहरातियों के भी कान काट सकते हैं । इनको गहराया है " राग दरबारी" , " अलग अलग वैतरणी " , " जल टूटता हुआ " जैसे उपन्यासों ने ।

समाज में वेश्याओं की समस्या तो आदि-अनादि काल से चल रही है । अतः हिन्दी उपन्यास के प्रारंभ काल से ही हमें इस समस्या पर उपन्यास मिल रहे हैं । बदलती परिस्थितियों के साथ उसका स्वरूप बदल रहा है, यह एक दीगर बात है । प्रेमचंद ने अपने उपन्यास " सेवासदन" में गौनहारिन वेश्या-जीवन का चित्रण किया है । हिन्दी आलोचकों का एक "प्योरीटियन" वर्ग तो "त्यागपत्र" की मृणाल को भी वेश्या ही मान रहा है । अपना और बच्चों का पेट पालने वाली सस्ती वेश्याएं जहां एक तरफ है, वहां एक-एक रात में हजारों कमाने वाली हाई-फाई प्रकार की काल-गर्ल भी हैं, दूसरी तरफ कुछ लोगों के विचित्र प्रकार के शौक को पूरा करने वाली गृहिणी वेश्याएं होती हैं, जो कुछ विशिष्ट प्रकार के अधिकारियों को पेश की जाती हैं । उनकी इस वेश्यावृत्ति का पता उनके पतियों को या पास-पड़ोस के लोगों को भी नहीं होता । जैनेन्द्र कृत "दशार्क" में हमें वेश्या का एक प्राचीन, किन्तु आज की दृष्टि से नवीन रूप मिलता है । इस उपन्यास की रंजना सामान्य कालगर्ल या जिस्मफरोशी करने वाली वेश्या नहीं है । डा. शकुन्तला द्विवेदी के शब्दों में --" वह शरीर को अपना

मूलधन समझती है और उसे सुरक्षित व पवित्र रखती है । वह प्रेम और करुणा और मैत्री के द्वारा गृहस्थी से ऊबे हुए लोगों का उपचार करती है । इससे उसके पास जाने वाले पुरुष "सूरजमुखी अँधेरे के" की नायिका "रक्तिका" [रत्ती] से जैसे क्षुब्ध होकर भागते हैं, वैसे भागते नहीं, आहत होते हैं । इतने आहत कि कई बार उसका अपमान भी करते हैं । वस्तुतः जैनेन्द्रजी ने यहाँ एक ऐसे नारी पात्र की कल्पना की है, जिसकी अवधारणा पश्चिम में एक दूसरे धरातल पर मिलती है । वहाँ कुछ ऐसी "प्रोफेशनल महिलाएं होती हैं, जो गृहस्थी की ऊब को मिटाकर, पुरुषों में पुनः पुंसत्व फूंकने का काम करती हैं । जो पुरुष अपनी पत्नी के तईं पुंसत्व का अनुभव नहीं करते, उनमें पुनः पुंसत्व भरने का काम ये महिलाएं करती हैं । परन्तु यहाँ भी जैनेन्द्रजी की अवधारणा उससे पूरी तरह मेल नहीं खाती, क्योंकि ये महिलाएं शरीर के माध्यम से ही ऐसा करती हैं । रंजना अपने अशरीरी प्रेम के द्वारा उसे संपादित करती है ।"[27]

इसी तरह नारी-शिक्षा की विभावना के कारण कुछ नये मुद्दे सामने आये हैं । जहाँ पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत उपन्यास "भाग्यवती" में नारी-शिक्षा का प्रचार किया गया है और उसमें नारी-शिक्षा के सकारात्मक पहलू को रखा गया है । प्रेमचंद-पूर्वकाल के उपन्यासों में ही एक उपन्यास मेहता लज्जाराम शर्मा का है — "स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी" । उसमें प्रत्यक्ष तो नहीं, किन्तु परोक्ष ढंग से नारी-शिक्षा का विरोध बताया गया है, क्योंकि उसमें यह दर्शाया गया है कि रमा पढ़ी-लिखी और स्वतंत्र विचारों वाली है, अतः उसके दाम्पत्य-जीवन में दरारें पड़ती हैं और लक्ष्मी अनपढ़ है और पुराने विचारों वाली है, अतः उसका संसार सुचारू रूप से चलता है । इस प्रकार उपन्यास नारी-शिक्षा के खिलाफ एक गलत संदेश प्रेषित करता है ।

वस्तुतः प्रेमचंद-पूर्वकाल में जो सामाजिक उपन्यास हमें प्राप्त होते हैं, उनमें दो प्रकार के लेखक हैं -- एक, नवसुधारवादी जो नवजागरण से उत्पन्न मुददों का प्रचार कर रहे थे। ऐसे लेखकों में लाला श्रीनिवासदास, पंडित श्रद्धाराम फल्लौरी, मन्नन द्विवेदी आकद मुख्य हैं। दूसरे वे लेखक थे जो पुरातनपंथी-सनातनवादी विचारधारा वाले थे, जो " Old is gold " के पक्षपाती थे और ऐसे लेखकों में मेहता लज्जाराम शर्मा, पं. किशोरीलाल गोस्वामी आदि थे।

किन्तु यहाँ हमारा कहना यह है कि ये दोनों समस्यामूलक उपन्यास "नारी-शिक्षा" के मुददे के कारण अस्तित्व में आये हैं। नारी-शिक्षा के कारण ही बाद में प्रेमचंद के उपन्यासों में तथा प्रेमचन्द-स्कूल के लेखकों के उपन्यासों में हमें शिक्षित नारी पात्र मिलते हैं। प्रेमचंद के "वरदान" उपन्यास की नायिका विरजन एक विदुषी नारी है, बाद में एक उच्च कवयित्री के रूप में उसका विकास लेखक ने बताया है। "प्रेमाश्रम" की विद्यावती, गायत्री आदि भी काफी शिक्षित महिलाएं हैं। "रंगभूमि" उपन्यास की सोफिया, रानी जाह्नवी, इन्दु; "कर्मभूमि" की सुखदा; "गोदान" की मालती, मीनाक्षी; "मंगलसूत्र" (अपूर्ण) की पुष्पा, मिस बटलर आदि भी शिक्षित नारी पात्र हैं। मालती तो विलायत से डाक्टरी की उपाधि लेकर आयी है। यह सब संभव हुआ है, उसकी पश्चादभू में "नारी-शिक्षा" और "नारी-जागरण" की प्रवृत्तियां हैं।

डा. राजरानी शर्मा के शोध-प्रबंध का शीर्षक है -- "हिन्दी उपन्यासों में रूढ़िमुक्त नारी"। यह शोध-कार्य हुआ है, वह इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी उपन्यास में ऐसे बहुतेरे नारी-पात्र हैं, जिन्होंने पारंपरिक प्रगतिविरोधी रूढ़ियों का डटकर मुकाबला किया है। "वे दिन" की रायना, "मुक्तिबोध" (जैनेन्द्र) की नीलिमा, "दशार्क" (जैनेन्द्र) की रंजना, "सूरजमुखी अँधेरे के"

की रक्तिका , " मछली मरी हुई" की कल्याणी , " रुकोगी नहीं राधिका ? " की राधिका , "आपका बण्टी" की शकुन , "चित्तकोबरा" {मृदुला गर्ग} की मनु , "तत्सम" {राजी सेठ} की वसुधा , "दिनांत" {शीला रोहेकर} , " मुझे चांद चाहिए " {सुरेन्द्र वर्मा} की वर्षा वसिष्ठ , तथा प्रभा खेतान की लगभग तमाम नायिकाएं रूढ़िमुक्त नायिकाएं हैं । अब तो "सैरोगेट वुमन" और "सैरोगेट मधर " तथा "रैण्टेड वोम्ब" का जमाना आ गया है , अभी हिन्दी उपन्यासों में इस प्रकार के चरित्र आये नहीं हैं , पर आयेंगे ।

गुजराती के ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता उपन्यासकार पन्नालाल पटेल ने "नसबंदी" से उत्पन्न एक समस्या पर कहानी लिखी थी , जिसमें "नसबंदी" का आपरेशन निष्फल जाने के फलस्वरूप पति-पत्नी में ×× आये बवंडर को लेखक ने अपनी कहानी का विषय बनाया था । डाक्टर जब यह साबित करता है कि तबीबी खामी के कारण ×× उसका ओपरेशन "फेल" गया है , तब कहीं जाकर उसके पति को अपनी पत्नी की पवित्रता पर विश्वास बैठता है । गुजराती के कथाकार शिवकुमार जोशी ने "नवनिर्माण" से उत्पन्न स्थितियों को आधार बनाकर एक उपन्यास की रचना की थी । रेणु कृत "जुलूस" में बंगला देश से आये रिफ्यूजी को कथावस्तु का आधार बनाया गया है ।

कहने का अभिप्राय यह कि जब-जब नवीन परिस्थितियों का निर्माण होता है , तब-तब उनको लेकर समाज में नवीन प्रकार की समस्याएं सामने आती हैं , और चूंकि उपन्यास एक समाजधर्मी विधा है , उसमें वे समस्याएं किसी-न-किसी रूप में प्रतिबिंबित होती हैं । इस तरह उपन्यासों का सीधा सम्बन्ध मानवीय समस्याओं से है । कलावादी और सौन्दर्यवादी उपन्यासों में भी कोई-न-कोई तो समस्या होती हैं । उन समस्याओं को हम मनोवैज्ञानिक समस्याएं भी कह सकते हैं ।

युगबोध और मानवीय समस्याएं :

वस्तुतः यह मुद्दा पूर्ववर्ती मुद्दे से जुड़ा हुआ है। पूर्ववर्ती मुद्दे में कहा गया है कि उपन्यास में मानवीय समस्याओं का निरूपण एक स्वाभाविक घटना है और जब-जब नवीन परिस्थितियां आकार लेती हैं, तब-तब नवीन प्रकार की समस्याएं सामने आती हैं। यह समस्याओं के साथ जो " समय" का सम्बन्ध है, उसे ही दूसरे शब्दों में "युगबोध" कहते हैं। प्रत्येक समय या काल का अपना एक युगबोध होता है और उसीके अनुरूप उस युग या समय के जीवन-मूल्य तय होते हैं। उपन्यास के उद्भव काल में जो सामाजिक मुद्दे उभर कर आये हैं, वे नवजागरण काल के युगबोध के परिणाम-स्वरूप हैं।

हमारे यहां साहित्य और समाज के सम्बन्ध को अटूट और परस्पराश्रित माना गया है। लेखक और कवि समाज की ही उपज हैं। अतः समाज के आदर्श और मूल्यों का प्रभाव उन पर पड़े बिना नहीं रह सकता। वह भी एक सामाजिक ईकाई है, अतः उसकी (अर्थात् समाज की) सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक गतिविधियों से वह अलग नहीं हो सकता।

कवि या लेखक अपने समाज का प्रतिनिधि होता है। समाज के भावों और विचारों को वह वाणी प्रदान करता है। वह जो कहता है, समाज के दूसरे लोग भी उसे महसूसते तो हैं, परन्तु अपनी प्रतिभा-शक्ति के कारण वह जिस रूप में उसे कह पाता है, दूसरे नहीं कह पाते। जिस प्रकार वायरलेस का यंत्र वायुमंडल से ध्वनियों को ग्रहण कर लेता है, ठीक उसी प्रकार साहित्यकार भी अपने समाज के भावों और विचारों को शीघ्रता से आत्मसात कर उन्हें अभिव्यक्त कर देता है, ताकि दूसरे उनसे अवगत हो सकें। देश-काल के हिसाब से समाज में भी परिवर्तन पाया जाता है। एक ही

देश के अलग-अलग प्रदेशों में सामाजिक स्थितियों में भी थोड़ा-बहुत अन्तर मिलता है । उसके अनुरूप उसके साहित्य में भी वह अंतर लक्षित किया जा सकता है । उसी प्रकार अलग-अलग कालखण्डों में भी समाज की स्थितियों में कुछ परिवर्तन पाया जाता है, जिसके फलस्वरूप उसके साहित्य में भी थोड़ा-बहुत अंतर आ जाता है । हमारे लगभग तमाम धर्मशास्त्रों में पुत्र-जन्म को विशेष महत्व दिया गया है, क्योंकि व्यक्ति के मृत्यु के उपरान्त उसकी उत्तर-क्रिया के संस्कार पुत्र ही संपन्न कर सकता है, ऐसी मान्यता उन सभी ग्रन्थों में पुष्ट कर दी गई है । पिता का वंश तो पुत्र से ही चलता है । परन्तु अब इन सदियों पुरानी मान्यताओं में कुछ परिवर्तन आ रहा है । पिछले वर्षों में पुत्री दारा दाह दिये जाने के कई किस्से सामने आये हैं । अब लड़कियां भी पढ़-लिखकर ऊँचे ओहदों पर पहुंचती हैं और अपने मां-बाप का वृद्धावस्था में सहारा बनती हैं, अतः साम्प्रत समय में युगबोध में भी यत्किंचित परिवर्तन लक्षित किया जा रहा है । अब घर में पुत्रीजन्म का भी स्वागत होता है । यह युगबोध का परिणाम है ।

"पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा अपने परिवार का उत्तरदायित्व संभाले हुए है । अपनी परिवार-प्रतिश्रुतता के कारण नील नामक युवक को चाहते हुए भी वह अविवाहित रहना पसंद करती है । सुषमा और नील के प्रेम की समाप्ति कुछ आलोचकों को अकारण, अस्वाभाविक व आदर्शवादी प्रतीत होती है । डा. घन-श्याम मधुप इस संदर्भ में लिखते हैं — "उषा पियंवदा का रचनाकार नितान्त आधुनिक होते हुए भी पुरातनपंथी है । कथ्य की दृष्टि से उनकी कथा-कृतियां प्रेमचन्द-युग से आगे नहीं बढ़ाई जा सकतीं । वे मूलतः भारतीय होने के कारण कथा के अन्त में एक कृत्रिम आदर्श-वाद को स्वीकारती हैं ।" 28

डा. घनश्याम मधुप का उपर्युक्त कथन अपने आप में ही विरोधाभासी है। एक तरफ वह उषा प्रियंवदा के रचनाकार को नितान्त आधुनिक मानते हैं, और फिर दूसरी ही सांस में यह भी कह जाते हैं कि उषाजी पुरातनपंथी हैं। ये दोनों बातें अन्तर्विरोधी हैं। डा. पारूकान्त देसाई ने इसका जवाब देते हुए कहा है —" सुषमा की स्थिति हमारे मध्यवर्गीय समाज का आकलन मात्र है। आज भी समाज में सुषमा जैसी अनेक नारियाँ मिलती हैं, जो परिवार-प्रतिबद्धता में अनेक वैयक्तिक सुख का बलिदान दे देती हैं, तो क्या अधिक "फारवर्ड" कहलाने के लोभ में लेखिका का वैसा करना योग्य होता? अब समाज में ऐसी नारियां मिलती हैं तो उपन्यास में आयेंगी ही। इसमें प्रेमचंद-युग से आगे-पीछे जाने का सवाल ही कहां आता है? वस्तुतः उपन्यास में जो स्थितियां अंकित हुई हैं उनमें सुषमा के लिए कदाचित् अन्य कोई विकल्प नहीं है। नील से विवाह करके वह नौकरी में रह सकती थीं, पर यह बात उस जैसी आधुनिक व शिक्षिता नारी के लिए स्वाभिमान के प्रतिकूल जाती। अतः सुषमा की परिणति कोई आदर्शवादी दृष्टि न होकर यथार्थ-वादी जीवन दृष्टि का ही परिणाम है।" [29]

इस प्रकार सुषमा यहां पुत्री होते हुए भी पुत्र के उत्तर-दायित्व का वहन करती है। यह नवीन युगबोध का ही परिणाम है। इसी तरह लक्ष्मीकांत वर्मा कृत उपन्यास " टेराकोटा " की मिति भी अपने परिवार के लिए अपने प्रेमी रोहित से विवाह नहीं करती और अपनी छोटी बहन उमा और छोटे भाई राम की उचित परवरिश एवं शिक्षा-दीक्षा के लिए पहले दिल्ली के वर्किंग गर्ल्स हास्टेल में रहकर मिस्टर खन्ना के आफिस में टाइपिस्ट-स्टेनो-सेक्रेटरी की नौकरी करती है। इसके साथ ही वह आई.ए.एस. की तैयारी भी करती है और अन्ततः उसमें उत्तीर्ण होकर पहले कलक्टर और फिर कमिश्नर तक के पद को हासिल करती है। मिति का यह जीवन-संघर्ष आधुनिक युगबोध के कारण संभव हुआ है।

डा. विवेकीराय के अनुसार मिति का संघर्ष एक साथ कई मोर्चो पर है । " पारिवारिक दरिद्रता , नारीत्व की माँग , स्वतंत्र अस्तित्व का आग्रह , नौकरी और रोहित को समझाने में वह जूझ रही है । सारी लड़ाई परंपरित मूल्य और मुक्त वातावरण की माँग के बीच है । यहाँ मिति के रूप में एक नये तेवर की आधुनिक नारी , एकदम क्रान्तिकारी मूल्यों के साथ चित्रित हुई है । उसकी दृष्टि में नैतिकता के संकोच में डूबा हुआ रोहित कायर और अताहती है । मिति अपने समस्त मनोवेगों के साथ जीने का अधिकार अधिकार माँगती है । वह परंपरित वैवाहिक जीवन बिताने में असमर्थ है ।" [30] यहाँ मिति का जो निरूपण हुआ है वह महानगरीय युगबोध के अनुरूप है ।

आज की आधुनिक शिक्षित नारी बदल रही है । "वे दिन" (निर्मल वर्मा) की रायना इसका एक ज्वलंत उदाहरण है । रायना आस्ट्रिया की युवती है । वह अपने पति जाक से अलग रहती है । उपन्यास का नायक "मैं" एक भारतीय छात्र है और प्राग में अपना खर्चा निकालने के लिए छुट्टियों में विदेशी टूरिस्टों के लिए "इंटरप्रेटर" का काम करता है । रायना के साथ वह तीन दिन रहता है । वियेना जाने से पूर्व एक रात रायना "मैं" के साथ हास्टेल में गुजारती है । अब तक पुरुष स्त्री को भोगता था , यहाँ एक स्त्री पुरुष को भोगती है । रायना नितान्त आजाद-ख्याल लड़की है । वह प्रेम को (शारीरिक प्रेम को) शरीर की एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में लेती है । दूसरे शब्दों में अक्सर वह ऐसा करती है । वह ज्यादा दिन अकेले रह नहीं सकती । किन्तु इस सम्बन्ध में नैतिकता के प्रश्न को वह बीच में नहीं लाती , क्योंकि दूसरे को यदि पछतावा न हो तो वह उसमें कोई बुराई नहीं देखती । वह कहती है —" मैं सिर्फ चाहती हूं कि दूसरे को बाद में पछतावा न हो... दैन इट इज मिजरी ।" [31]

इस प्रकार आज हम देखते हैं कि आधुनिक स्त्री अपनी यौन-आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विवाह-संस्था को आवश्यक नहीं मानती है। पहले स्कूल में दाखिले के लिए पिता के नाम की मुहर जरूरी थी, अब नये कानून के अनुसार वहां मां का नाम भी चल सकता है। फिल्म अभिनेत्री नीना गुप्ता ने स्त्रियों के लिए एक नया रास्ता खोल दिया है। अब समाज में कुंआरी xxxx मांओं का प्रचलन बढ़ रहा है। "मुझे चांद चाहिए" उपन्यास की नायिका वर्षा § वसिष्ठ विवाहित नहीं है, फिर भी नायक हर्ष के बच्चे को जन्म देती है।

वैश्विक विचार-प्रवाहों के कारण नारी-विमर्श अधिकाधिक विकसित हो रहा है। पहले कहा जाता था — "Behind every great man there is a woman." किन्तु अब नारी स्वयं अपना कद बढ़ा रही है। पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों में नारी ने अनेक क्षेत्रों में पदार्पण किया है। जैसे — चन्द्रमुखी बोज और कादम्बिनी बोज § प्रथम महिला स्नातिकाएं §, भीकाजी कामा § प्रथम महिला क्रांतिकारी §, श्रीमती एनी बेसण्ट § कांग्रेस की प्रथम महिला अध्यक्ष §, अमृता शेरगिल § प्रथम xx महिला चित्रकार §, सरोजिनी नायडू § प्रथम महिला राज्यपाल §, डा. मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी § प्रथम महिला विधायक §, श्रीमती सुचेता कृपलानी § प्रथम महिला मुख्यमंत्री §, श्रीमती इन्दिरा गांधी § प्रथम महिला प्रधानमंत्री §, श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित § प्रथम महिला राजदूत §, तैयबा बेगम § प्रथम मुस्लिम स्नातक महिला §, सुवर्णकुमारी देवी § प्रथम महिला उपन्यासकार §, अन्ना राजम् ज्योर्ज § प्रथम महिला xxx आई.ए.एस. §, श्रीमती किरण बेदी § प्रथम महिला आई.पी.एस. § श्रीमती हंसा मेहता § प्रथम महिला उपकुलपति §, प्रतिभा आर्य § प्रथम नेत्रहीन स्नातिका §, ए. ललिता § प्रथम महिला इंजीनियर §, शान्तारानी § प्रथम महिला बैंक मैनेजर §, शुभासिनी दासगुप्ता § प्रथम महिला सेनाधिकारी §, डा. विद्या कोठेकर § प्रथम महिला नाभिकीय भौतिक विद § , कु. आरती साहा § प्रथम इंग्लिश चैनल तैराक महिला §, कु. पी.टी. उषा § एशियाड गेम्स में स्वर्णपदक प्राप्त करने वाली प्रथम महिला धावक §, कु. कल्पना चावला § प्रथम

महिला अवकाश-यात्री ‡ [32]

कहनेका अभिप्राय यह कि जीवन के विविध और वर्जित क्षेत्रों में नारी दिन-ब-दिन आगे पदार्पण कर रही है । पिछले कुछेक वर्षों के 10वें और 12 वें बोर्ड के नतीजों पर एक दृष्टि डालें तो ज्ञात होगा कि प्रथम दश आनेवाले छात्रों की सूची में अब प्रायः पचास प्रतिशत छात्राएं होती हैं । अभी हाल में ही "फोरच्यून" मैगेजिन ने जो सन् 2006 का सर्वेक्षण दिया है उसमें चेन्नई की इन्द्रा नूयी ने "बिज़नेस-वुमन" के रूप में प्रथम स्थान प्राप्त किया है — "Here is another feather for the already decorated hat of Pepsi Co's global CEO Indra Nooyi. Chennai born nooyi has been named the most powerful bussiness woman by fortune magazine - ahead of illustrious names like oprah wintery and eBay CEO meg whitman Nooyi climbed ten spots from last year's No 11 - to take the throne on fortune's 2006 list." [33]

इस प्रकार जैसे-जैसे युगबोध में नये-नये परिवर्तन आयेंगे, नवीन ‡ख्‡x स्थितियों का निर्माण होगा और उससे समस्याओं के स्वरूप में भी परिवर्तन आयेगा ।

हिन्दी उपन्यास के विकास के विभिन्न सोपान :

हमारे शोध-प्रबंध का संबंध हिन्दी उपन्यासों से है, अतः बहुत संक्षेप में ही सही पर हिन्दी उपन्यास के विकास और उसके विभिन्न सोपानों पर विचार कर लेना आवश्यक होगा । यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि उपन्यास एक नयी विधा है और भारतीय भाषाओं के साहित्य में उसका आविर्भाव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से पाया जाता है । प्रथम बंगला उपन्यास "आलालेर घरेर दुलाल" ‡ टेकचन्द ठाकुर ‡ सन् 1857 में प्रकाशित होता है । हिन्दी का प्रथम उपन्यास कुछ आलोचक "परीक्षागुरु" ‡ लाला श्रीनिवासदास ‡ को मानते हैं, क्योंकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में उसको हिन्दी का

प्रथम उपन्यास माना है,[34] लेकिन इधर जो नयी खोजें हुई हैं उनके आधार पर हिन्दी के अधिकांश आलोचक अब "भाग्यवती" ﴾ पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी ﴿ को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानते हैं। [35] उसका प्रकाशन सन् 1878 के आसपास माना जाता है। अतः सन् 1878 को यदि हम हिन्दी उपन्यास के आविर्भाव का प्रथम बिन्दु मानें तो हिन्दी उपन्यास ×××××× के विकास का इतिहास सन् 1878 से प्रारंभ होता है। हिन्दी उपन्यास का विकास तो शुरू हो गया लेकिन हिन्दी उपन्यास को उसकी वास्तविक पहचान मुंशी प्रेमचन्द से प्राप्त हुई। अतः हिन्दी उपन्यास के विकास के सोपानों की बात करते समय प्रेमचन्द के नाम को केन्द्र में रखना पड़ता है और इस प्रकार मोटे तौर पर उसके तीन सोपान ऐतिहासिकों ने माने हैं — ﴾क﴿ पूर्व-प्रेमचन्दकाल, ﴾ख﴿ प्रेमचन्दकाल और ﴾ग﴿ प्रेमचन्दोत्तरकाल।

﴾क﴿ पूर्व-प्रेमचन्दकाल ﴾ सन् 1878 से 1918 ई. ﴿ :

हिन्दी उपन्यास का यह आरंभिक समय है। इस काल खण्ड का उपन्यास औपन्यासिक कला की दृष्टि से अपरिपक्व, स्थूल-कथा-वस्तु प्रधान, विश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण से दूर, उपदेशप्रधान, मनोरंजनप्रधान, फार्मूलापरक, शिल्प की दृष्टि से कमजोर उपन्यास था। इस काल-खण्ड की औपन्यासिक प्रवृत्तियों में हम निम्नलिखित को परिगणित कर सकते हैं — 1. सामाजिक उपन्यास, 2. ऐतिहासिक उपन्यास, 3. जासूसी उपन्यास, 4. तिलस्मी उपन्यास तथा 5. अनूदित उपन्यास।

इस समय के सामाजिक उपन्यासकारों में पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी, लालाश्रीनिवास दास, पं. बालकृष्ण भट्ट, मेहता लज्जाराम शर्मा, पं. किशोरीलाल गोस्वामी, अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध", ठाकुर जगमोहन सिंह, राधाकृष्णदास, ब्रजनंदन सहाय, मन्नन द्विवेदी प्रभृति की गणना कर सकते हैं। [36] इस समय के सामाजिक उपन्यासकारों को हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं —/क/नवसुधारवादी और /ख/ सनातनपंथी या पुरातनपंथी। नवसुधारवादी नवजागरण के नेताओं से

प्रभावित थे और वे समाज की पुरानी रूढ़ियों को उखाड़ फेंक देना चाहते थे , क्योंकि वे रूढ़ियां प्रगतिविरोधी अतएव मानव-विरोधी थीं । वे नारी-शिक्षा के हिमायती थे , विधवा-विवाह के पक्षकार थे , वृद्ध-विवाह और शिशु-विवाह के विरोधी थे , दहेज-प्रथा के विरोधी थे , जातिवाद की दीवारों को ढहाना चाहते थे । संक्षेप में वे समाज को एक नया रूप , नया आकार देना चाहते थे । दूसरी तरफ सनातनपंथी और पुरातनवादी प्राचीनता के पक्षपाती थे ," old is gold " में विश्वास रखने वाले थे । नवसुधारवादियों में पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी , लालाश्रीनिवासदास , पं. बालकृष्ण भट्ट , हरिऔध , मन्नन द्विवेदी आदि थे और उनके प्रमुख उपन्यास क्रमशः "भाग्यवती" , "परीक्षागुरु " , "सौ अजान एक सुजान " , "अधखिला फूल " , "रामलाल " प्रभृति हैं । सनातनपंथियों में मेहता लज्जाराम शर्मा , पं. किशोरीलाल गोस्वामी " , "राधाकृष्णदास आदि हैं और उनके प्रमुख उपन्यासों में क्रमशः "स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी" , "लीलावती या आदर्शसती " , "निस्सहाय हिन्दू " प्रभृति की गणना कर सकते हैं ।

उक्त दोनों धारा के उपन्यासकारों के वैचारिक अंतर को देखने के लिए उभय से हम एक-एक उदाहरण लेते हैं । "भाग्यवती" उपन्यास में स्त्री-शिक्षा की बात लेखक करते हैं । भाग्यवती शिक्षित होने के कारण जब उसका पति उसे त्याग देता है तो नौकरी कर लेती है और आत्मनिर्भरता के कारण वह अपने मां-बाप के पास नहीं जाती । बाद में उसके पति को अपनी गलती का अहसास होता है और वह उसे अपने पास बुला लेता है । दूसरी तरफ मेहता लज्जाराम शर्मा कृत उपन्यास "स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी " में शिक्षित रमा के दाम्पत्य में दरारें पड़ती हैं और अशिक्षित लक्ष्मी का संसार सुचारूरूपेण चलता है , इस प्रकार प्रकारान्तर से लेखक नारी-शिक्षा का विरोध करते हैं । बहुत-से पुराणपंथी आज भी नारी-शिक्षा को अच्छा नहीं मानते और वर्तमान समय की तमाम बुराइयों में उनको नारी-शिक्षा ही नजर आती है । वेश्या-समस्या को देखने का उनका नजरिया भी पुराना और घटिया है ।

इस काल-खण्ड के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में पं. किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, मथुराप्रसाद शर्मा, बलदेवप्रसाद मिश्र तथा मिश्रबंधु आदि की गणना कर सकते हैं और उनके चर्चित ऐतिहासिक उपन्यासों में "तारा", "मस्तानी", "सुलताना रजिया बेगम" {पं. किशोरीलाल गोस्वामी}; "नूरजहां", "हम्मीर" {गंगाप्रसाद गुप्त}; "नूरजहां बेगम वा जहांगीर" {मथुराप्रसाद शर्मा}; "अनारकली" {बलदेवप्रसाद मिश्र}; "वीरमणि" {मिश्रबंधु प्रभृति की परिगणना की जा सकती है। इनके अतिरिक्त जयरामदास गुप्त "वाजिदअली शाह" "चांदबीबी" तथा बाबू ब्रजनंदन सहाय कृत "लालचीन" आदि भी उल्लेख्य कहे जा सकते हैं।

इस काल के उपन्यास प्रायः मुसलमान युग से सम्बद्ध हैं और इनमें शुद्ध इतिहास की अपेक्षा लोक-प्रचलित कथाओं और जनश्रुतियों का आश्रय अधिक लिया गया है। डा. महेन्द्र चतुर्वेदी इस संदर्भ में लिखते हैं — "इनकी सबसे बड़ी कमजोरी ही यह है कि वे कहीं भी ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि करने में सफल नहीं हुए। युगीन संस्कृति, वातावरण, महत चरित्रों की जीवन-झांकियां तथा मानवीय भावनाओं के चित्र उनमें नहीं उभरते।"[37] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ~~श्रि×ऊमें~~ ने भी पं. किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों में देशकाल की क्षतियोंका संकेत दिया है।[38] डा. भारतभूषण अग्रवाल इस काल-खण्ड के उपन्यासों को "ऐतिहासिक उपन्यास न कहकर, "ऐतिहासिक रम्याख्यान" {Historical Romance कहते हैं।[39] कारण यही है कि इन उपन्यासों में इतिहास कम और कल्पना ~~ज्यादा है~~ ज्यादा है। इसका अर्थ कोई यह कतई न करें कि ऐतिहासिक उपन्यास में कल्पना की कोई गुंजायश नहीं है। पर लेखक ऐतिहासिक तथ्यों के साथ खिलवाड़ नहीं कर सकता। ऐतिहासिक उपन्यास क्या चीज है और उसके लेखन में कितनी मेहनत होती है, इसका ख्याल निम्नलिखित तथ्य से आयेगा कि "झांसी की रानी" {1956} उपन्यास महाश्वेतादेवी ने किस प्रकार लिखा था — "महाश्वेतादेवी ने अपना पहला उपन्यास "झांसी की ~~{1956}~~ रानी" 1956 में लिखा था। लक्ष्मीबाई पर यह उपन्यास इतिहास की किसी भी पुस्तक

पर भारी पड़ेगा । गहन शोध , समर्पण , प्रतिबद्धता और श्रम के साथ , इतिहास के सूक्ष्मतम तत्वों का प्रामाणिक स्रोतों से समर्थन पाने व विवेचन करने के बाद , महाश्वेता ने इस उपन्यास को लिखा है , लक्ष्मीबाई के जीवन के वे पक्ष , जिनका अभी ऊपर जिक्र हुआ है और जो उनकी स्वीकृत छवि पर कुछ प्रश्न उठाते हैं , सबको महाश्वेता ने उपन्यास में लिया है , ऐतिहासिक उपन्यास लेखन का यह सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है । उपन्यास के अन्त में संदर्भ ग्रन्थों की सूची में इंग्लीश की 25 , बंगला की 4 , मराठी की 2 , व हिन्दी बुंदेलखण्डी की 5 पुस्तकें हैं । विभिन्न सरकारी गजेटियर , संसदीय पत्र व अभिलेख हैं । इनके अतिरिक्त 26 वर्ष की आयु में अकेले झांसी , ग्वालियर , कालपी, जबलपुर , पूना , इन्दौर की बीहड़ यात्राएं व साक्षात्कार हैं । यह जानना दिलचस्प है कि सावरकर के लिखे 1857 के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास को पढ़कर महाश्वेता ने इस उपन्यास को लिखने की प्रेरणा पाई , पर उन्होंने वह गलती नहीं की जो वृन्दावनलाल वर्मा ने की । उनकी लक्ष्मीबाई "इतिहास को जीनेवाली नायिका है " , रचने वाली नहीं । "[40] इस उदाहरण के सामने तो इस युग में लिखे गये ये तमाम उपन्यास केवल और केवल 'रम्याख्यान' ही ठहरते हैं ।

इस काल-खण्ड की तीसरी प्रवृत्ति जासूसी उपन्यासों की है । वैसे जासूसी उपन्यासों को किसी भी भाषा-साहित्य में स्तरीय विधा के रूप में नहीं लिया गया है । परन्तु प्रारंभिक काल में हिन्दी उपन्यास को लोकप्रिय बनाने में उसकी जो महती भूमिका है , उसके कारण यहां उसका उल्लेख कर रहे हैं । ये जासूसी उपन्यास बाद में भी लिखे गये , अभी भी लिखे जा रहे हैं , पर उन्हें गंभीर व स्तरीय न मानने के कारण बाद में किसी भी इतिहासकार या आलोचक ने इन उपन्यासों का जिक्र नहीं किया है । इस समय के जासूसी उपन्यासकारों में बाबू गोपालराम गहमरी , रामलाल वर्मा , किशोरीलाल गोस्वामी , जयरामदास गुप्त तथा रामलालदास आदि हैं । बाबू गोपालराम गहमरी ने तो लगभग 200 के करीब जासूसी उपन्यास लिए हैं । उन्होंने "जासूस" नाम से एक

पत्रिका भी निकाली थी । उन्हें हिन्दी का "कानन डायल" कहा गया है । इस समय के कुछ उल्लेखनीय जासूसी उपन्यासों में "अद्भुत लाश", "सरकती लाश", जासूस की भूल", "जासूस की ऐयारी" ४ बाबू गोपालराम गहमरी ४ ; "चालाक चोर", "जासूस के घर खून" ४ रामलाल वर्मा ४ ; जिन्दे की लाश" ४ किशोरीलाल गोस्वामी ४ ; "लंगड़ा खूनी" ४ जयरामदास गुप्त ४ ; "हम्माम का मुर्दा" ४ रामदासलाल ४ वगैरह को गिनाया जा सकता है ।

इस काल की चौथी प्रवृत्ति तिलस्मी उपन्यासों की है । "तिलस्म" शब्द यूनानी शब्द "टैलेस्मा" का हिन्दीकरण है । इसका अर्थ जादू, इन्द्रजाल, अलौकिक रचना या गड़े हुए धन या खजाना आदि के ऊपर बनाई गई सर्प की आकृति आदि होते हैं । [41] इस क्षेत्र में देवकीनंदन खत्री, दुर्गाप्रसाद खत्री ४ देवकीनंदन खत्री के सुपुत्र ४, हरेकृष्ण जौहर, किशोरीलाल गोस्वामी, गुलाबदास आदि उपन्यासकार आते हैं । पर इन सबमें सबके ऊपर हैं बाबू देवकीनंदन खत्री । इनका "चन्द्रकान्ता" और "चन्द्रकान्ता संतति" कई-कई भागों में है । इनका प्रबंध कौशल अद्वितीय है । अन्यथा तिलस्मी उपन्यासों को भी जासूसी उपन्यासों की भांति स्तरीय और साहित्यिक नहीं माना जाता है । दूसरे ये उपन्यास, उपन्यास की परिभाषा में भी "फिट" नहीं बैठते हैं, क्योंकि लगभग तमाम-तमाम औपन्यासिक आलोचक उपन्यास को "यथार्थ" की विधा मानते हैं, जबकि इन उपन्यासों का सम्बन्ध तो अयथार्थ और वायवी तत्वों से है ।

इस काल-खण्ड की पांचवीं प्रवृत्ति "अनूदित" उपन्यासों की है । इस प्रवृत्ति को भी बाद के कालों में स्थान नहीं दिया गया है, इसका अर्थ यह नहीं कि जासूसी और तिलस्मी की भांति ये उपन्यास स्तरीय और साहित्यिक नहीं होते । स्तरीय और साहित्यिक तो होते ही हैं, लेकिन इन उपन्यासों को उन-उन भाषाओं के साहित्य की धरोहर माना जाता है, जिनमें ये प्रथमतः लिखे गए हैं । इस काल-खण्ड में अंग्रेजी, बंगला, उर्दू, मराठी, गुजराती आदि

कई भाषाओं के उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद हुआ । इन उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यास को दिशा दी है । हिन्दी का पाठक उपन्यास विधा से परिचित होता है, यह इनका योगदान है ।

(ख) प्रेमचन्दकाल (सन् 1918- 1936 ई.) :

हिन्दी उपन्यास को उसका गौरव मुंशी प्रेमचन्द द्वारा प्राप्त हुआ । पूर्व-प्रेमचन्दकाल में हमने देखा कि हिन्दी में अंग्रेजी, बंगला, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के उपन्यास अनूदित रूप में आते थे, लेकिन किसी हिन्दी उपन्यास का अनुवाद दूसरी भाषा में होता नहीं था । कारण यह था कि अन्य भाषा-भाषी लोग हिन्दी उपन्यास को उसके उपयुक्त नहीं समझते थे । परन्तु मुंशी प्रेमचंद ने समीकरण बदल दिया । अब हिन्दी उपन्यास की गणना भी साहित्यिक और स्तरीय उपन्यासों में होने लगी । उन्होंने हिन्दी उपन्यास की दशा और दिशा ही बदल दी । इसीलिए उनको "उपन्यास-सम्राट" कहा जाता है । डा. रामविलास शर्मा ने अपने ग्रन्थ "प्रेमचन्द तथा उनका युग" में प्रेमचन्द को "युगनिर्माता" साहित्यकार का बिरुद दिया है । डा. एस. एन. गणेशन कहते हैं कि प्रेमचन्द वह पहले उपन्यासकार हैं जिनमें मानव-चरित्र की पहचान प्राप्त होती है ।[42] प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को पुष्ट, बहुआयामी, चरित्रात्मक, महत् उद्देश्यलक्षी बनाया तथा उसे एक नयी दृष्टि (मानवतावादी दृष्टि) प्रदान की ।[43] जीवन और पाश्चात्य उपन्यास साहित्य का जितना अनुभव व ज्ञान प्रेमचन्दजी को था उतना उनके पुरोगामियों में संभवतः किसीको नहीं था । वे स्वयं तो विश्वसाहित्य का अवगाहन करते ही थे अपने समकालीन साहित्यकारों को भी उसके लिए प्रेरित करते थे । 23 मार्च सन् 1912 ई. में अश्कजी पर लिखा गया उनका यह पत्र इस तथ्य की पुष्टि करता है — " पढ़ने के लिए लाइब्रेरी से मनोविज्ञान की कोई किताब ही ले लो, स्कूली कोर्स की किताब नहीं । अभी एक किताब निकली है (द आस्पेक्ट्स आफ नावेल) इस विषय पर अच्छी पुस्तक है । मतलब सिर्फ यह कि

इन्सान उदार-विचारवाला हो जाए । उसकी संवेदनाएं व्यापक हो जाये । डाक्टर टैगोर के साहित्यिक और दार्शनिक निबंध बहुत ही आला दर्जे के हैं । रोमा रोलां का "विवेकानंद " जरूर पढ़ो । उनकी "गांधी" भी पढ़ने के काबिल है । मारले के साहित्यिक निबंध लाजवाब हैं । डा. राधाकृष्णन् की दर्शन सम्बन्धी किताबें, टाल्स्टाय का " वाट इज़ आर्ट " वगैरह किताबें जरूर देखनी चाहिए । " [44] और कदाचित् इसीलिए निराला ने प्रेमचंद के निधन पर कहा था — " आँखें कौनो kxx के पास आएं तो आहिके पास आएं । " अर्थात् यदि आँखें किसीके पास हैx थीं तो इन्हीं के पास थीं । [45] यहां आँखें अर्थात् कौन-सी आँखें ? जीवन और जगत तथा विश्व-साहित्य प्रवाह को देखने-समझनेवाली आँखें । गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा था —" एक रत्न मिला था तुमको (अर्थात् हिन्दी वालों को), तुमने खो दिया । "[46] डा. पारूकान्त देसाई ने "गोदान" के संदर्भ में लिखते हुए गुरूदेव की उस बात की ओर संकेत करते हुए लिखा है —" हिन्दी वालों ने उस रत्न को तो खो दिया, पर उस रत्न की ओर से मिला हुआ "गोदान" रूपी रत्न तो हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है । " [47] एक बार कुछ शगूफापरस्त और फतवावादी लोगों ने प्रेमचन्द के बारे में सवाल उठाया कि प्रेमचन्द अब अप्रासंगिक हो गए हैं, तब उसका उत्तर देते हुए अज्ञेयजी ने कहा था —" साहित्यकार की संवेदना को, मानवीय संवेदना को, मानवीय चेतना को हमने अधिक विकसित या प्रसारित नहीं किया है । प्रेमचंद को हम पीछे छोड़ आये, यह दावा सार्थक उसी दिन होगा जिस दिन उनसे बड़ी मानवीय संवेदना हमारे बीच प्रकट हो । उसके बाद ही हम यह कह सकेंगे कि प्रेमचन्द का महत्व ऐतिहासिक महत्त्व है । तब तक वह हमारे बीच में हैं, पुराने पड़कर भी समर्थ हैं, साहित्य-संस्कार में गुरु स्थानीय हैं और उनसे हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए । " [48] संक्षेप में हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द का स्थान मेरूदण्ड के समान है । इसी-लिए तो उपन्यास के विकास की बात जब होती है, प्रेमचन्द्र केन्द्रस्थ होते हैं ।

प्रेमचंद "कला जीवन के लिए " के पक्षकार हैं , अतः उनका समग्र लेखन सोद्देश्य है । निरुद्देश्य एक पंक्ति भी नहीं लिखी है । हिन्दी में उन्होंने समस्यामूलक सामाजिक उपन्यासों का वास्तविक सूत्रपात किया है । उनके उपन्यासों में सेवासदन , वरदान , प्रेमाश्रम , रंगभूमि , कायाकल्प, कर्मभूमि , निर्मला , प्रतिज्ञा , गबन , गोदान , मंगलसूत्र ﴾अपूर्ण﴿ आदि हैं जो क्रमशः वेश्या-समस्या , अनमेल-विवाह-समस्या , किसानों की समस्या , औद्योगीकरण के दुष्प्रभावों की समस्या , कृषक-समस्या , स्वाधीनता-संग्राम तथा दलित-समस्या , दहेज समस्या , मध्यवर्गीय दिखावा तथा भ्रष्ट पुलिस तंत्र की समस्या , स्वाधीनता-संग्राम तथा कृषकों के शोषण और उनके ऋण की समस्या जैसी समस्याओं पर केन्द्रित हैं । प्रेमचन्द मानवीय शोषण के खिलाफ थे । उन दिनों हमारे देश में चार प्रकार के शोषण थे — किसान-मजदूरों का शोषण , नारी का शोषण , दलितों का शोषण और समग्र देश का शोषण विदेशी सत्ता द्वारा । प्रेमचंदजी ने इस चतुर्मुखी शोषण पर अपनी कलम चलायी है । प्रेमचंद एक जागरूक कलाकार हैं । उन्होंने अपने समय की नब्ज़ को पहचाना है । किन्हीं कारणों से यदि तत्कालीन इतिहास नष्ट हो जाता है तो प्रेमचन्द के कथा-साहित्य के जरिए उसका पुनर्सृजन हो सकता है ।उनके ऊपर दो जीवन-चरित्र मिलते हैं — "कलम का मजदूर " ﴾ मदनगोपाल ﴿ और " कलम का सिपाही " ﴾ अमृतराय ﴿ । सच ही प्रेमचंद ताजिन्दगी अपनी कलम के माध्यम से लड़ते रहे हैं — सत्ता के खिलाफ , समाज के खिलाफ , जड रूढ़ियों के खिलाफ , अंध-विश्वासों के खिलाफ , महाजनी सभ्यता के खिलाफ , संक्षेप में जहां भी शोषण होता है , उसके खिलाफ और मानवता के पक्ष में । उनकी प्रगतिवादी विचारधारा सतत विकसित होती रही है । वह क्रमशः आर्यसमाज , गांधीवाद और मार्क्सवाद-आंबेडकरवाद की ओर संक्रमित होती रही है । फलतः आदर्शवाद , यथार्थोन्मुखी आदर्शवाद , यथार्थवाद के आयामों को उनकी कला का स्पर्श मिलता रहा है । "हंस" और "जागरण " जैसी पत्रिकाओं को घाटे पर भी चलाकर उन्होंने एक पीढ़ी का निर्माण किया है ।

प्रेमचंद काल के अन्य उपन्यासकारों में विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक", पांडेय बेचन शर्मा "उग्र", आचार्य चतुरसेन शास्त्री, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, ऋषभचरण जैन, जयशंकर प्रसाद, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, वृन्दावनलाल वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सियारामशरण गुप्त, गोविन्दवल्लभ पंत, राजेश्वरप्रसाद, धनीराम प्रेम, प्रफुल्लचन्द्र ओझा, श्रीनाथ सिंह, उषादेवी मित्रा, शिवरानी देवी, जेतरानी दीक्षित, चन्द्रशेखर शास्त्री, गंगाप्रसाद श्रीवास्तव, जैनेन्द्रकुमार, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, आदि मुख्य हैं। इनमें अंतिम तीन लेखक — जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा — अपने प्रारंभिक कृतित्व में ही थे। उनकी कला का विकास तो प्रेमचन्दोत्तर युग में ही हुआ। इस काल-खण्ड की औपन्यासिक प्रवृत्तियां दो हैं — सामाजिक उपन्यास और ऐतिहासिक उपन्यास, लेकिन प्रमुख प्रवृत्ति तो सामाजिक उपन्यासों की ही रही है। प्रेमचन्द का जादू सब उपन्यासकारों पर ऐसा चढ़ा था कि वृन्दावनलाल वर्मा तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री जैसे उपन्यासकार जो बाद में ऐतिहासिक उपन्यासकारों के रूप में ख्यात हुए, उन्होंने भी इस काल-खण्ड में अधिकांश उपन्यास सामाजिक प्रकार के ही दिए है।

इस काल-खण्ड के प्रमुख व चर्चित उपन्यास इस प्रकार हैं: "माँ", "भिखारिणी" (कौशिक); "घण्टा", "चंद हसीनों के खुतूत", "बुधुआ की बेटी" (उग्र); "हृदय की परख", "हृदय की प्यास", "खवास का ब्याह" (आचार्य चतुरसेन शास्त्री); "प्रेमपथ", "पतिता की साधना", "त्यागमयी" (भगवतीप्रसाद वाजपेयी); "दिल्ली का व्यभिचार", "वेश्यापुत्र", "भाई", "गदर", "सत्याग्रह", "दुराचार के अड्डे", "सत्याग्रह" (ऋषभचरण जैन); "कंकाल", "तितली" (प्रसाद); "विदा" (प्रतापनारायण श्रीवास्तव); "तरंग" (राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह); "अप्सरा", "अलका", "निरुपमा" (निराला); "मंच" (राजेश्वरप्रसाद); "वेश्या का हृदय" धनीराम प्रेम); "क्षमा" (श्रीनाथसिंह); "मुक्त", "तलाक" (प्रफुल्लचन्द्र ओझा); "नारी हृदय" (शिवरानीदेवी); "वचन का मोल

§उषादेवी मित्रा § ; "हृदय का कांटा " § तेजोरानी दीक्षित § ; "विधवा के पत्र " § चन्द्रशेखर शास्त्री § ; "गंगा-जमुनी" § गंगाप्रसाद श्रीवास्तव § ; "मदारी" §गोविन्दवल्लभ पंत § ; "गोद" , " अंतिम आकांक्षा" § सियारामशरण गुप्त § ; "गढ़कुण्डार" , "विराटा की ×× पद्मिनी " , ××× "लगन" , "× संगम" , "कुण्डलीचक्र" § वृन्दावनलाल वर्मा § ; "पतन" , "चित्ररेखा " § भगवतीचरण वर्मा § ; "परख" , "सुनीता" §जैनेन्द्र § ; "घृणामयी" § इलाचन्द्र जोशी § आदि-आदि । यहां एक तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा कि उपर्युक्त सूची में केवल सन् 1936 तक के उपन्यासों को ही लिया है । कई ऐसे लेखक हैं जिनके महत्वपूर्ण और उल्लेख्य उपन्यास प्रेमचन्दोत्तरकाल में आते हैं । [49]

उपर्युक्त उपन्यासों में "व्यभिचार" , "पतिता की साधना " , "दिल्ली का व्यभिचार " , "वेश्यापुत्र " , "दुराचार के अड्डे " , "कंकाल", "वेश्या का हृदय " , "अप्सरा" , "घृणामयी" , " चित्रलेखा " आदि उपन्यासों का संबंध हमारी आलोच्य समस्या से है ।

§ग§ प्रेमचन्दोत्तरकाल § 1936 से अद्यावधि § :

अध्ययन की सुविधा हेतु प्रस्तुत कालखण्ड को हम निम्नलिखित विभागों में रख सकते हैं — /1/ प्रेमचन्दोत्तर से स्वतंत्रता-पूर्व तक का कालखण्ड § सन् 1936- 1947 § , /2/ स्वातंत्र्योत्तर काल § सन् 1947- 1960 § , /3/ साठोत्तरी ×× काल § 1961-1985 § तथा /4/ समकालीन उपन्यास § 1986-अद्यावधि § ।

/1/ प्रेमचन्दोत्तर से स्वतंत्रता-पूर्व तक का हिन्दी उपन्यास :

इस कालखण्ड के ×××××× उपन्यासकारों में पांडेय बेचन शर्मा "उग्र" , भगवतीप्रसाद वाजपेयी , सियारामशरण गुप्त , भगवतीचरण वर्मा , अमृतलाल नागर , उपेन्द्रनाथ अश्क , ××××××××× , ऋषभचरण जैन , आचार्य

चतुरसेन शास्त्री , विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" , जयशंकरप्रसाद , प्रतापनारायण श्रीवास्तव , राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह , सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" , उषादेवी मित्रा , गोविन्दवल्लभ पंत , वृन्दावनलाल वर्मा , इलाचन्द्र जोशी , जैनेन्द्र , अज्ञेय , उदयशंकर भट्ट , यशपाल , रांगेय-राघव , आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी , महापंडित राहुल सांकृत्यायन , प्रभाकर माचवे , आदि की गणना की जा सकती है ।

इस कालखण्ड की महत्त्वपूर्ण औपन्यासिक कृतियों में "सरकार तुम्हारी आँखों में " , "जीजीजी" § उग्र § ; "पिपासा" § भगवतीप्रसाद वाजपेयी § ; "नारी" § सियारामशरण गुप्त § ; "टेढ़े मेढ़े रास्ते " §भगवतीचरण वर्मा § ; "महाकाल" § अमृतलाल नागर § ; "गिरती दीवारें " § उपेन्द्रनाथ अश्क § ; "चम्पाकली" § , "हिज हाइनेस " , "बुर्दाफरोश " , "हर हाइनेस " , "मयखाना" , "तीन इक्के " § ऋषभचरण जैन § ; "आत्मदाह" , "नीलमणि " § आचार्य चतुरसेन शास्त्री § ; "संघर्ष" § कौशिक § ; "इरावती" /अपूर्ण/ § प्रसाद§ ; "विजय" , "विकास" § प्रतापनारायण श्रीवास्तव § ; "राम-रहीम" , "गांधी टोपी" , "पुरुष और नारी" , " देव और दानव" § राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह § ; "प्रभावती" , " चोटी की पकड़ " §निराला§; "अपने पिया" , , "जीवन की मुस्कान" , "पथचारी" § उषादेवी मित्रा §; "जुनिया" § गोविन्दवल्लभ पंत § ; "कभी न कभी" , "झांसी की रानी", कचनार" § वृन्दावनलाल वर्मा § ; "सन्यासी" , "पर्दे की रानी" , "प्रेत और छाया" § इलाचन्द्रजोशी § ; "त्यागपत्र" , "कल्याणी" § जैनेन्द्र § ; "शेखर एक जीवनी" भाग-1 और 2 § अज्ञेय § ; "वह जो मैंने देखा " §उदयशंकर भट्ट § ; "दादा कामरेड" , "देशद्रोही" , "पार्टी कामरेड ", "मनुष्य के रूप " § यशपाल § ; "घरौंदे" , "विषादमठ" § रांगेय राघव §; "बाणभट्ट की आत्मकथा" § आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी § ; "सिंह सेनापति " , " जययौधेय " § महापंडित राहुल सांकृत्यायन § ; "परन्तु" § प्रभाकर माचवे § आदि की गणना कर सकते हैं । (50)

इन उपन्यासों में "जीजीजी" , "महाकाल" , " गिरती दीवारें", "चम्पाकली " , "हीज हाइनेस" , " हर हाइनेस" , "बुर्दाफरोश " ,

"मयखाना" , "तीन इक्के " § , "पुरुष और नारी" , "पथचारी" , "जुनिया" , "प्रेत और छाया " , "त्यागपत्र" , "शेखर एक जीवनी" , "मनुष्य के रूप" आदि उपन्यासों में कहीं विस्तार से तो कहीं अंशतः वेश्या-जीवन का चित्रण हमें मिलता है ।

/2/ स्वातंत्र्योत्तरकालीन हिन्दी उपन्यास §1947-1960 :

उपर्युक्त उपन्यासकारों के अतिरिक्त इस कालखण्ड में जो नये उपन्यासकार आते हैं उनमें द्वारिकाप्रसाद , विष्णुप्रभाकर , हिमांशु श्रीवास्तव , नागार्जुन , भैरवप्रसाद गुप्त , अमृतराय , डा. धर्मवीर भारती , लक्ष्मीनारायण लाल , राजेन्द्र यादव , रामेश्वरशुक्ल "अंचल" , लक्ष्मीकान्त वर्मा , फणीश्वरनाथ रेणु , शिवप्रसाद मिश्र "रुद्र" , शैलेश मटियानी , देवेन्द्र सत्यार्थी , सर्वेश्वरदयाल सक्सेना , सूर्यकुमार जोशी , नरेश मेहता , डा. रघुवंश , कृष्ण बलदेव वैद , कृष्णा सोबती , श्रीलाल शुक्ल , रजनी पनीकर आदि उपन्यासकारों के नाम गिनाये जा सकते हैं ।

इस कालखण्ड के प्रमुख उपन्यासों में "कढ़ी में कोयला" , फागुन के दिन चार § उग्र§ ; अपराजिता" , "धर्मपुत्र" , "गोली" , "बगुला के पंख " , "पत्थरयुग के दो बुत " , "वैशाली की नगरवधू" , "सोमनाथ", "वयं रक्षामः " , "सोना और खून " § आचार्य चतुरसेन शास्त्री § ; "चलते चलते" , "पतवार" , "मनुष्य और देवता" , धरती की सांस , "भूदान" , " एक प्रश्न" , " उनसे न कहना " , दरार और धुआं" §भगवतीप्रसाद वाजपेयी § ; "बयालीस" , "विसर्जन" , "विषमुखी" , विश्वास की वेदी पर " , "बेकसी का मजार " § प्रतापनारायण श्रीवास्तव § ; " नारी एक पहेली" , "सूरदास" , "पूरब और पश्चिम " , "चुम्बन और चांटा " § राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह §; "काले कारनामे" , "बिल्लेसुर बकरिहा" , "कुल्ली भाट " § निराला§ ; "यामिनी" , "नौजवान" , "जलसमाधि" , मैत्रेय , "फरगेट मी नोट ", "कागज की नाव" § गोविन्दवल्लभ पंत § ; "अचल मेरा कोई " , "मृगनयनी" , "सोना" , "अमरबेल" , "टूटे कांटे" , "अहिल्याबाई ", §xxxxxxxxxxx महादजी सिंधिया " , "भुवन विक्रम" , "उदय-

किरण ﴾ वृन्दावनलाल वर्मा ﴿ ; "मुक्तिपथ" , "सुबह के भूले " , "जिप्सी", "जहाज का पंछी " ﴾ इलाचन्द्र जोशी ﴿ ; "नदी के द्वीप" ﴾अज्ञेय﴿ ; "पथ की खोज" , "बाहर-भीतर" , "रोड़े और पत्थर" , "अजय की डायरी " ﴾ डा. देवराज ﴿ ; "अपने अपने खिलौने" , "भूले बिसरे चित्र", "वह फिर नहीं आयी " ﴾ भगवतीचरण वर्मा ﴿ ; "सेठ बांकेमल" , "बूंद और समुद्र" , "सुहाग के नूपुर" , शतरंज के मोहरे" , " ये कोठेवालियां" , ﴾अमृतलाल नागर﴿ ; "नये मोड़" , "सागर लहरें और मनुष्य" ,"एक नीड दो पक्षी" , "शेष-अशेष " , डा. शेफाली" ﴾ उदयशंकर भट्ट ﴿ ; "घेरे के बाहर" ﴾ द्वारिकाप्रसाद ﴿ ; "निशिकान्त" , "तट के बंधन " ﴾ विष्णु प्रभाकर ﴿ ; लोहे के पंख " ﴾ हिमांशु श्रीवास्तव ﴿ ; "दिव्या" , "अमिता", झूठा सच" ﴾ यशपाल﴿ ; "रतिनाथ की चाची" , "बलचनमा" , "नयी पौध " , "बाबा बटेसरनाथ " , " दुखमोचन" , वरुण के बेटे " , "कुंभी-पाक" ﴾ नागार्जुन ﴿ ;"मुर्दों का टीला" , "हुजूर" , "सीधा सादा रास्ता" , "कब तक पुकारूं " ﴾ डा. रांगेय राघव ﴿ ; "मसाल" , "गंगामैया" , "सत्तीमैया का चौरा" , "हवेली" ﴾ भैरवप्रसाद गुप्त ﴿ ; "बीज" , "हाथी के दांत" , "नागफनी का देश " ﴾ अमृतराय﴿ ; गुनाहों का देवता , "सूरज का सातवां घोड़ा " ﴾ डा. धर्मवीर भारती ﴿ ; "धरती की आंखें " , " बया का घोंसला और सांप " , "काले फूल का पौधा " ﴾ डा. लक्ष्मीनारायण लाल ﴿ ;"प्रेम बोलते हैं " , "उखड़े हुए लोग " , "कुलटा" , "शह और मात" , "सारा आकाश " ﴾ राजेन्द्र यादव ﴿ ; "काठ का उल्लू और कबूतर" ,﴾"केशवचन्द्र वर्मा ﴿ ; "चढ़ती धूप ", "उलका" ,"नयी इमारत" ﴾ रामेश्वर शुक्ल " अंचल " ﴿ ; "खाली कुर्सी की आत्मा" ﴾ लक्ष्मीकान्त वर्मा ﴿ ; "मैला आंचल " , "परती: परिकथा " ﴾ रेणु ﴿ ; " दूब जनम आयी " ﴾ शिवसागर मिश्र ﴿ ; "बहती गंगा" ﴾ शिवप्रसाद मिश्र "रुद्र" ﴿ ; "हौलदार" , "कबूतरखाना" ﴾शैलेश मटियानी ﴿ ;"रथ के पहिये" , "ब्रहमपुत्र" ﴾ देवेन्द्र सत्यार्थी ﴿ ;. "जंगल के फूल " ﴾ राजेन्द्र अवस्थी ﴿ ; "सुखदा" , "विवर्त ", "जयवर्द्धन" ﴾जैनेन्द्रकुमार﴿ ; "सोया हुआ जल" ﴾ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना﴿ ;"दिगम्बरी" ﴾सूर्यकुमार जोशी ﴿ ; "डूबते मस्तूल" , "दो एकान्त" ﴾ नरेश मेहता ﴿ ;

"चांदनी के खण्डहर" , ("गिरधर गोपाल) ; " तंतुजाल" (डा. रघुवंश) ; "ड्रामा" , "सांचा" (प्रभाकर माचवे) ; "उसका बचपन" (कृष्ण बलदेव वैद) ; आदि की गणना कर सकते हैं । (51)

उपर्युक्त उपन्यासों में "कड़ी में कोयला" , " फागुन के दिन चार " , "गोली" ; "वैशाली की नगरवधू " , " विषमुखी" , "नारी एक पहेली" , "चुम्बन और चांटा " , "यामिनी" , " जिप्सी" , "वह फिर नहीं आयी " , "ये कोठेवालियां " , "घेरे के बाहर" , "दिव्या " , " काले फूल का पौधा" , "कुलटा" , " मैला आंचल" , "कबूतरखाना" , " जंगल के फूल " , "दिगम्बरी" , "दो एकान्त" , "चांदनी के खण्डहर " , "उसका बचपन " आदि उपन्यास हमारे आलोच्य विषय की दृष्टि से उल्लेख्य कहे जा सकते हैं । इनमें कहीं विस्तार , कहीं संक्षेप तो कहीं संकेतित ढंग से वेश्या-जीवन का चित्रण मिलता है ।

(3) साठोत्तरी काल (1961- 1985) :

इस कालखण्ड के प्रमुख उपन्यासों में "रेखा" , " सबहिं नचावत राम गोसाईं " (भगवतीचरण वर्मा) ; "अमृत और विष" , "नाच्यौ बहुत गोपाल " (अमृतलाल नागर) ; "नदी फिर बह चली", " कथा-सूर्य की नयी यात्रा " (हिमांशु श्रीवास्तव) ; "यह पथ बंधु था " (नरेश मेहता) ; "सांप और सीढ़ी" , काला जल" (गुलशेरखान शानी) ; "मित्रो मरजानी" , " सूरजमुखी अंधेरे के " "जिन्दगीनामा" (कृष्णा सोबती) ; "मन वृन्दावन " , " प्रेम अपवित्र नदी " (लक्ष्मीनारायण लाल) ; "एक कटी हुई जिन्दगी , एक कटा हुआ कागज " , " टेराकोटा" (लक्ष्मीकान्त वर्मा) ; "लौटती लहरों की बांसुरी " (भारतभूषण अग्रवाल) ; "अनदेखे अनजान पुल " (राजेन्द्र यादव) ; "चारुचन्द्रलेख" , "पुनर्नवा" (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी) ; अपने अपने अजनबी (अज्ञेय) ;

"उग्रतारा ", "इमरतिया" ‡नागार्जुन ‡ ; "बारह घण्टे- ", "मेरी तेरी इसकी बात " ‡ यशपाल " ; "शहीद और शोहदे" ‡ मन्मथनाथ गुप्त ‡ ; "अलग अलग वैतरणी", "नीला चांद " ‡ डा. शिवप्रसाद सिंह ‡ ; "राग दरबारी" ‡ श्रीलाल शुक्ल ‡ ; "आधा गांव ", "दिल एक सादा कागज ", "टोपी शुक्ला " ‡ डा. राही मासूम रजा ‡ ; "जल टूटता हुआ ", " सूखता हुआ तालाब ", "बिना दरवाजे का घर ", "अपने लोग " ‡ डा. रामदरश मिश्र ‡ ; "धरती धन न अपना ", नरक कुण्ड में बास " ‡ जगदीशचन्द्र ‡ ; "सफेद मेमने" ‡मणि मधुकर ‡ ; "कांचघर", ‡ रामकुमार भ्रमर ‡ ; "कड़ियां", "तमस" ‡ भीष्म साहनी ‡ ; " एक पंखुड़ी की तेज धार" ‡ ~~शमशेर सिंह नरूला~~ ‡ ; "मछली मरी हुई ‡ राजकमल चौधरी" ‡ ; "बैसाखियोंवाली इमारतें", "अठारह सूरज के पौधे " ‡ रमेश बक्षी ‡ ; " पचपन खंभे लाल दीवारें ", ‡ "रुकोगी नहीं राधिका ? " ‡ उषा प्रियंवदा ‡ ; "डाक बंगला", "तीसरा आदमी", " आगामी अतीत" ‡ कमलेश्वर ‡ ; "अंधेरे बन्द कमरे", " अंतराल " ‡ मोहन राकेश ‡ ; "वे दिन", " लाल टीन की छत " ‡ निर्मल वर्मा ‡ ; "आपका बण्टी", "महाभोज " ‡मन्नू भण्डारी ‡ ; "कृष्णकली", "चौदह फेरे ", "मायापुरी", "श्मशान-चम्पा", " रतिविलाप" ‡ शिवानी‡ ; "एक चूहे की मौत", "छाको की वापसी " ‡ बदी उज्जमां ‡ ; "मुर्दाघर", " एक कटा हुआ आसमान" ‡ जगदम्बाप्रसाद दीक्षित ‡ ; "~~ख्र~~ सीमाएं टूटती हैं " ‡ श्रीलाल शुक्ल ‡ ; "टपरेवाले" ‡कृष्णा अग्निहोत्री ‡ ; "बंटता हुआ आदमी" ‡निरूपमा सेवती‡ ; "~~हमके हिस्से की धूप~~ ", "चित्त कोबरा" ‡मृदुला गर्ग ‡ ; "महानगर की मीता", "दूरियां " ‡ रजनी पनीकर ‡ ; "मेरे संधिपत्र " ‡ सूर्यबाला सिंह ‡ ; "आंखों की दहलीज", "उसका घर " ‡ मेहरून्निसा परवेज ‡ ; "पाषाणयुग" ‡ मालती जोशी ‡ ; "बेघर", "नरक-दर-नरक " ‡ ममता कालिया ‡ ; "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई ‡ शैलेश मटियानी ‡ आदि उपन्यासों की गणना कर सकते हैं ।[52]

यहां एक बात ~~केxस्वतिकर~~ की ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा कि इधर उपन्यास-विधा में सबसे ज्यादा लेखन हुआ है, अतः उन सभी

उपन्यासों को शामिल करना एक दुष्कर कार्य है ।

उपर्युक्त उपन्यासों में से "रेखा" , "नाच्यौ बहुत गोपाल" , "नदी फिर बह चली" , "सांप और सीढ़ी" , "इमरतिया" , "शहीद और शोहदे " , " अलग अलग वैतरणी " , " दिल एक सादा कागज " , "सूखता हुआ तालाब " , " धरती धन न अपना " , "नरक कुण्ड में बास " , "कांचघर" , "मछली मरी हुई " , " अठारह सूरज के पौधे " , "आगामी अतीत" , "कृष्णकली" , "रतिविलाप" , " एक चूहे की मौत " , " मुर्दाघर" , " टपरेवाले" , "उसका घर" , "किस्सा नर्मदा-बेन गंगूबाई " आदि उपन्यासों में कहीं विस्तार से तो कहीं संक्षेप में वेश्या - जीवन का चित्रण मिलता है ।

§4§ समकालीन हिन्दी उपन्यास : § सन् 1980 - अद्यावधि § :

पिछले 25-30 वर्षों के उपन्यासों को आलोचक समकालीन उपन्यास § Contemporary Novels § के नाम से अभिहित करते हैं । इन उपन्यासों में "विष कन्या" , "गैंडा" § शिवानी§ ; "उसकी पंचवटी" § कुसुम अंसल § ; "अनारो" § मंजुल भगत § ; "टूटा हुआ इन्द्रधनुष" § मंजुल भगत § ; "टुकड़ों में बंटा इन्द्र धनुष " §प्रभा सक्सेना§ ; "बिन्दु" §सुनीता जैन § ; "सहचारिणी" §मालती जोशी§ ; "रेत की मछली" § कान्ता भारती § ; "पतझड़ की आवाजें " §निरूपमा सेवती§ ; "नावें" , " सीढ़ियां " § शशिप्रभा शास्त्री § ; "दो लड़कियां " § रजनी पनीकर§ ; "दिनांत" §शीला रोहेकर § ; "तत्सम" राजी सेठ § ; " ढहती दीवारें " §मीना दास § ; "अन्त नहीं " §इन्दिरा दीवान § ; [53] "कुरु कुरु स्वाहा" , " नेताजी कहिन" §मनोहरश्याम जोशी § ; "मुझे चांद चाहिए " § सुरेन्द्र वर्मा § ; "इदन्नमम" , "अल्मा कबूतरी" § मैत्रेयी पुष्पा § ; "दशार्क " §जैनेन्द्र§ ; "अकेला पलाश" § मेहरून्निसा परवेज § ; उसके हिस्से की धूप " §मृदुला गर्ग § ; "मछली बाजार" § राजेन्द्र अवस्थी§ ; "कर्करेखा" , " परसों के बाद " § शशिप्रभा शास्त्री § ; [54] "गूंगे कंठ की पुकार" , " एक

१ॠलग्रि×हुई× अलग श्रुआ×शुरूआत " , जली हुई रस्सी " ‌§ जवाहरसिंह§ ; "अग्निपंखी" , " यामिनी कथा" § सूर्यबाला सिंह § ; "जोगी मत जा" § विश्वम्भरनाथ उपाध्याय § ; "रात का रिपोर्टर" § निर्मल वर्मा § ; "शहर में कर्फ्यू " 7विभूतिनारायण राय § ; "घास गोदाम" , " किस्सा गुलाम" § रमेशचन्द्र शाह § ; "झ्रिश्रि× झीनी झीनी बीनी चदरिया" , §अब्दुल बिस्मिल्लाह § ; "नीले घोड़े का सवार " § राजेन्द्र मोहन भटनागर § ; "चक्रव्यूह" § श्रवणकुमार गोस्वामी § ; "कांचघर" ;[55] अपना अपना आकाश " § देवेश ठाकुर § [56] ; "धपेलबाबा" §श्याम-बिहारी § ; "आखिरी कलाम " § दूधनाथ सिंह § ; "काशी का अस्सी " § काशीनाथ सिंह § ; "उत्तर बायां है " § विद्यासागर नौटि-याल § ; "अक्षयवट" § नासिरा शर्मा § ; जुस्तजू-ए-निहां उर्फ रुपिया-वास की अन्तर्कथा " § जितेन्द्र भाटिया§ ; "सात आसमान" , " कैसी आग लगाई " § असगर वजाहत § ; "काला पहाड़" , "बाबल तेरा देस में § भगवानदास मोरवाल § ; "बशारत मंजिल" § मंज़ूर एहतेशाम§ ; "किस्सा हवेली " § हृदयेश § ; ईसुरी फाग " § मैत्रेयी पुष्पा§ ; "बीच में विनय " , "ईंधन" § स्वयं प्रकाश § ; "जमीन" § अ×× भीमसेन त्यागी § ; "दर्दपुर" § क्षमा कौल § ; "गोबाइल" § क्षमा शर्मा § ; "बाजत अनहद ढोल " § मधुकरसिंह § ; "जो इतिहास में नहीं आया है " § राकेशकुमार सिंह § ; "छाड़न" § सुरेन्द्र स्निग्ध § ; "पिछले पन्ने की औरतें " § सुश्री शरदसिंह § ; " कुइयांजान" §नासिरा शर्मा § ; "ताबीज" § शीला रोहेकर § ; "एक इन्द्रधनुष जुबेदा के नाम " §सूर्यबाला§;✓ &छिन्नमस्ता" , " पीली कोठी " § प्रभा खेतान § ; "खुले गगन के लाल सितारे " , " सलाम आखिरी " , "पत्ताखोर" § म× मधु कांकरिया § ; "गवाह गैरहाजिर " , " जीवछ का बेटा बुद्ध " , "शीर्षक " , "चिरं-जीव " § चन्द्रकिशोर जायसवाल § ; "पाथरघाटी का शोर" , "तिलचट्टे", "सहराना" § पुन्नीसिंह § ; "मामक सार " , "सोख्ता" §अखलाक अहमद जई § ; "नरवानर" § शरणकुमार लिंबाले § ; "जीवा" §देवेश ठाकुर§ ;

"रात में जागने वाले " ,पहर दोपहर " § असग़र वज़ाहत § ; "तत्वमसि" §जयाजादवानी§ ; "किशनगढ़ का अहेरी" , " सावधान , नीचे आग है ", "धार" , " पांव तले की दूब " , " जंगल जहां शुरू होता है " , "सूत्र-धार" , "रानी की सराय " § संजीव § ; "जलते जहाज पर " , "उत्तर जीवन कथा" § स्वयं प्रकाश § ; "क्या घर क्या परदेस " , " काली सुबह का सूरज " , " पंचमी तत्पुरुष " , " आग-पानी आकाश " , § रामधारीसिंह दिवाकर § ; " वे वहां कैद हैं " , " परछाई नाच " §प्रियंवद § ; "अपनी सलीबें " § नमितासिंह § ; "जिबह" , "शहर चुप है ", "बयान" , "मुसलमान" , "नीलाम्बर" § मुशर्रफ आलम जौक़ी § ; "मीरा याज्ञिक की डायरी " § बिन्दु भट्ट § ; " किशोरी का आसमां " §रजनी गुप्त§ आदि उपन्यासों को लिया जा सकता है । (57)

इन उपन्यासों में से "सैंडा" , "उसकी पंचवटी" , "अनारो" , "रेत की मछली" , "पतझड़ की आवाजें " , "ढहती दीवारें " , "कुरु कुरु स्वाहा" , " दशार्क " , " अल्मा कबूतरी" , "मछली बाजार" , "बशारत मंजिल" , " ईसुरी फाग" , "दर्दपुर" , "छाइन" , "पिछले पन्ने की औरतें " , "सलाम आखिरी" , "तिलचट्टे " ,नरवानर" , "आग-पानी-आकाश" ,"किशोरी का आसमां " आदि उपन्यासों में कहीं संक्षेप तो ~~कई~~ कहीं विस्तार के साथ वेश्या-जीवन के चित्र उपलब्ध होते हैं ।

वेश्या-समस्या : स्वरूप-विवेचन :
=========================

आलोच्य विषय का सीधा सम्बन्ध वेश्या-जीवन से है , जो हिन्दी साहित्य में उपन्यास के माध्यम से हमारे सामने आया है । अतः बहुत संक्षेप में यहां उसके स्वरूप-विवेचन पर विचार किया जा रहा है । वेश्या का अस्तित्व आदि-अनादि काल से रहा है । आदिम युग में स्त्री-पुरुष का यौन-जीवन पशुओं के समान होगा , अर्थात् नर-मादा सम्बन्ध । परंतु मानव-सभ्यता के विकास के साथ विवाह-संस्था का जन्म हुआ , जिसके कारण स्त्री-पुरुष यौन-संबंध कुछ हद तक अनुशासित

हुए और सभ्य समाज में यह माना जाने लगा कि विवाहेतर यौन-संबंध पाप ~~हक~~ है , अपराध है , असामाजिक है । आदिम युग में स्त्री-पुरुष दोनों बाहर जाते थे , बल्कि बाहर ही रहते थे । घर तो केवल सर्दी-धूप और वर्षा से बचाव के लिए होता था । वह शिकार करके अपना पेट भरते थे और स्त्री-पुरुष दोनों शिकार पर जाते थे , पर कालांतर में यह जिम्मेदारी पुरुष के ~~कंधे~~ कंधों पर आ गयी । द्विजेन्द्रलाल राय की एक कहानी में इस बात को प्रतीकात्मक ढंग से कहा गया है । [58] और शनैः शनैः स्त्री-पुरुष के कार्य-क्षेत्र "घरे-बाहिरे" में बंट गए । फलतः स्त्री तो प्रायः घर में रहने लगी और अतएव उसका यौन-संबंध अपने पति या मालिक या स्वामी तक ही महदूद हो गया , लेकिन पुरुष तो आजीविका की तलाश में बाहर जाता था , अतः कई बार दूसरी स्त्री से भी उसका यौन-संबंध स्थापित हो जाता था । इन विवाहेतर यौन-~~संबंधों में~~ संबंधों में जब प्रेम के स्थान पर विवशता और अर्थ ने प्रवेश किया तब "वेश्या" जैसे शब्द का आविष्कार हुआ । इस संदर्भ में गार्लिन स्पेन्सर के निम्नलिखित मत को उद्धृत किया जा सकता है — " मानव-प्रगति के आदि शत्रु लोभ और वासना एवं मानव-प्रगति के आदिम व्यवधान , अज्ञान और आलस्य , आत्मरति , दम्भ और नैतिक ~~xxxxxxxx~~ उत्तरदायित्व का अभाव — सदा की भांति आज भी सामाजिक बुराई के यही कारण हैं किन्तु फिर भी वेश्यावृत्ति आदि युग से लेकर आज तक अधिकांशतः एक आर्थिक समस्या ही रही है ।" [59]

द्वितीय अध्याय में वेश्या-प्रकरण पर विस्तार से ~~xxxx~~ विचार होगा , अतः यहां केवल उसके कुछेक पक्षों की चर्चा करने का उपक्रम है । मोटे तौर पर जो स्त्री अपने आर्थिक फायदे के लिए अपने शरीर का सौदा करती है उसे हमारे समाज में वेश्या के नाम से अभिहित किया जाता है । बहुपुरुषगामिनी स्त्री को भी कई बार गाली के तौर पर "वेश्या" से सम्बोधित किया जाता है । स्त्री के यौन-सबंध को सीधे उसके चरित्र के साथ जोड़ दिया गया है और कोई स्त्री यदि इस मामले में अधिक स्वतंत्र है , या उसके एकाधिक पुरुषों से यौन-संबंध ~~हक~~ है , तो उसे चरित्रहीन

करार दिया जाता है और उसे भी "वेश्या" की गाली दी जाती है । यहां एक बात का ध्यान रहे , जिस समाज में बहुपतिविवाह-प्रथा ‖ ‖ होती है , वहां ऐसी स्त्री को वेश्या नहीं माना जाता । द्रौपदी इसका उदाहरण है । पांच पांडवों से उसका विवाह हुआ था । ऐसी एक कथा जन-साधारण में प्रचलित है कि जैसे ही अर्जुन ने मत्स्य-वेध किया , भीम द्रौपदी को उठाकर भागा और माता कुंती को बाहर से ही चिल्लाकर कहने लगा कि देखो वह क्या लाया है ? तब कुंती ने स्वभावतः कहा कि तुम पांचों भाई उसे आपस में बांट लो । कुंती को ज्ञात नहीं था कि भीम द्रौपदी को लाया है । अंततः माता की बात के निर्वाह के लिए द्रौपदी पांचों से विवाह करती है । राजाजी ने अपनी पुस्तक "महाभारत" में इसे इस प्रकार रखा है । द्रौपदी के पिता उस विवाह का विरोध करते हैं , तब युधिष्ठिर द्रुपद को समझाते हुए कहते हैं -- " O. King kindly excuse us in a time of great peril we vowed that we would share all things in common and we cannot break that pledge our mother has commanded us so " द्रुपद finally obeyed a yielded and marriage was celebrated " . 60

बहरहाल जो भी हो प्राचीन समय से न केवल हमारे यहां , बल्कि पूरे विश्व में , किसी-न-किसी रूप में यह जिस्मफरोशी का व्यवसाय चल रहा है । वात्स्यायन ने अपने षष्ठ अध्याय में "वैशिक अधिकरण" के अन्तर्गत वेश्याओं के संदर्भ में विस्तार से चर्चा की है । वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में तीन प्रकार की नायिकाओं का उल्लेख किया है — कन्या , पुनर्भू और वेश्या । प्रथम नायिका कन्या सर्वश्रेष्ठ है , पुनर्भू उससे निकृष्ठ और वेश्या उससे भी निकृष्ट होती है । कन्या अविवाहित नायिका को कहा जाता है और विवाह के उपरान्त ही नायक उससे यौन-संबंध स्थापित कर सकता है । विवाह से पूर्व ही (61)
किसी पुरुष से रति-संबंध जोड़नेवाली नायिका को पुनर्भू कहते हैं । "महाभारत" की कुंती ने विवाह-पूर्व ही रति-संबंध जोड़कर कर्ण को जन्म दिया था और सामाजिक अपवादों से बचने के लिए उसे नदी में

बहा दिया था ।

तीसरी कोटि की नायिका को वेश्या कहा गया है । "वेश्या" के लिए "वारांगना " , "नगरवधू" , पुरवनिता" , "गणिका" जैसे शब्द भी प्रयुक्त होते हैं । कामसूत्रकार ने "गणिका" शब्द न रखकर "वेश्या" शब्द ही रखा है । इससे एक सामाजिक उलझन दूर हो जाती है । वेश्या और गणिका में द्यावा-पृथिवी का अन्तर होता है । कामसूत्र के साक्ष्य से ही यह जाना जाता है कि गणिकाएं यद्यपि वारांगनाएं ही हुआ करती थीं किन्तु साधारण वेश्याओं से कहीं अधिक वे सम्मानित और गुण-शील सम्पन्न हुआ करती थीं । वेश्याओं में जो सर्वाधिक सुंदरी, गुणवती , शीलवती हुआ करती थी उसीको गणिका पद प्रदान किया जाता था । राजा लोग भी उसका सम्मान करते थे , उठकर अभ्युत्थान करते थे — " पूजिता च सदा राज्ञा गुणवद्भिश्च संस्तुता । प्रार्थनीयाभिगम्या च लक्ष्यभूता च जायते ।। "62

प्राचीन साहित्य में वेश्याओं और गणिकाओं के कई उल्लेख मिलते हैं । "ललितविस्तर" में "शास्त्रविधिकुशला गणिका यथैव " कहकर राजकुमारी को गणिका के समान शास्त्रज्ञा बताया गया है । राजशेखर ने काव्यमीमांसा में लिखा है कि प्राचीनकाल में बहुत-सी गणिकाएं और राजकुमारियां बहुत उत्तम कवि हो गयी हैं । इन गणिकाओं की पुत्रियों को नागरिकों के पुत्रों के साथ पढ़ने का अधिकार था । गणिका वस्तुतः समस्त गणराज्य की संपत्ति और शोभा मानी जाती थी । उस पर समस्त समाज गर्व करता था । लिच्छवी गणराज्य की गणिका अम्बपाली एवं मृच्छकटिक की गणिका वसंतसेना अपने-अपने समय में राज्य और जनता के अभिमान की वस्तु समझी जाती रही हैं । 63

ऋग्वेद से लेकर समस्त परवर्ती साहित्य में वेश्याओं का उल्लेख मिलता है । यही नहीं , वेश्याओं से संबंधित पृथक ग्रन्थों के निर्माण भी हुए हैं । बाण ने कादम्बरी में वेश्याओं की चौदह कलाओं का उल्लेख किया है । भरत ने नाट्यशास्त्र में के नंदिकेश्वर के अभिनय-

दर्पण में वेश्याओं को अभिनेत्री " लिखा है ।

प्राचीन काल में इन गणिकाओं और वेश्याओं को विशेष महत्व मिलता था । समाज में उनका एक विशेष स्थान था और उनको सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था । वात्सयायन कामसूत्र की उक्त टीका में ही लिखा गया है —" "वेश्या" नाम सुनकर यह कल्पना न कर लेनी चाहिए कि सामाजिक , व्यावहारिक और कर्मसंबंधी बंधनों को कुचलकर फेंक देनेवाली स्त्री । वेश्या एक असाधारण स्त्री है जिसका पालन-पोषण , शिक्षण-प्रशिक्षण असाधारण ढंग से होता है । वेश्याओं को ऐसी सामाजिक शिक्षा दी जाती है , जिसमें शारीरिक , मानसिक विकास की संभावनाएं रहती हैं । अन्य प्रकार की स्त्रियां उस प्रकार की शिक्षा से वंचित रहती हैं । पुरातनकाल से ही वेश्याएं शिक्षिता और दक्ष होती आयी हैं । उनकी योग्यता से अभिजात कुल की कुमारियां लाभ उठाती थीं । उन्हें समाज का एक विशिष्ट अंग माना जाता था ।"[65]

ऋग्वेद में वेश्या के लिए एक शब्द मिलता है — वेशस्करी , अर्थात विशेषरूप से श्रृंगार करनेवाली व्यभिचारिणी स्त्री । तंत्र-ग्रन्थों में भी वेश्याओं का उल्लेख मिलता है । बौद्ध-साहित्य वेश्याओं के गुणानुवाद से भरा हुआ है । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्राचीन काव्यों , पुराणों तथा जैन-ग्रन्थों में वेश्याओं का विस्तृत वर्णन मिलता है । तांत्रिकों की गुप्त साधना में वेश्याओं का प्रयोग एक साधन के रूप में होता था । गौतम बुद्ध जब तक परिव्राजक नहीं हुए थे , उनके महल में पीनपयोधरा , कमलनयनी वेश्याएं चुहल करती डोलती थीं । जब गौतम पर वैराग्य चढ़ने लगा , वे उदास रहने लगे तो उनके पिता ने उनके मनबहलाव के लिए ऐसी वेश्याएं नियुक्त की थीं जिनकी कमर पतली थी , नितम्ब बोझिल थे और जिनके नेत्र खिले हुए कमल के समान थे । उनके महल की सभी वेश्याएं रूपगर्विताएं थीं । संस्कृत साहित्य के भास , कालिदास , विशाखदत्त , माघ , दण्डी , शूद्रक , बाण आदि सभी कवियों ने अपने ग्रन्थों में वेश्याओं के रोचक वर्णन किए हैं ।[66]

इतना ही नहीं स्कन्दपुराण में पिंगला और कमलावती नाम की दो वेश्याओं के बड़े रोचक वर्णन मिलते हैं । राजतरंगिणी में कमला नामक वेश्या का वर्णन उपलब्ध होता है । कश्मीर-नरेश जयापीड उसे अत्यन्त चाहते थे । हंसी और नागलता नामक दो वेश्याएं थीं जिन पर कश्मीर के अन्य महाराजा चन्द्रवर्मा बुरी तरह से आसक्त थे । अपनी रानियों और पटरानियों से ज्यादा सम्मान वे उन वेश्याओं को देते थे । चितौड़ के महाराणा उदयसिंह की रखैल "वीरा" नामक एक वेश्या थी , जो जितनी ही गुणवती थी , उतनी ही ×वीरांगना भी थी । महाराणा की तरफ से उसने कई युद्ध लड़े थे । हम्मीररासो में चन्द्रकला पातर का रोचक वर्णन मिलता है , जिसके सामने अल्लाउद्दीन खिलजी को मुंह की खानी पड़ी थी । ओरछा नरेश की वेश्या प्रवीणराय में इतना अलौकिक ××× सौन्दर्य और शील था कि अकबर जैसे संयमी बादशाह का संयम भी डोल गया था ।[67] ×कच्छ×के×महारराव×लखपतसिंह××× प्रवीणराय हिन्दी के रीतिकाल के कवि केशव की शिष्या थीं और उनके कवित्त के भी बहुत चर्चे मिलते हैं । प्रवीणराय ओरछा नरेश की प्रेमिका थी , अतः जब अकबर की ओर से उसे बुलावा आता है , तब ओरछा नरेश के होश उड़ जाते हैं । प्रेमिका को किसीके दरबार में भेजना राजपूती शान के खिलाफ था और यदि न भेजे तो अकबर के क्रोध का पहाड़ ओरछा जैसे एक छोटे-से राज्य पर टूट सकता था । तब प्रवीणराय अपनी कवित्व-शक्ति और बुद्धि-चातुर्य से रास्ता निकालती है । वह अकबर को एक काव्यमय संदेश भेजती है —

" बिनती राय प्रवीण की सुनियो चतुर सुजान ।
जूठी पतरी भखत है बारी बायस श्वान ।। "[68]

इस संदेश के पाते ही अकबर अपना इरादा बदल देते हैं । यह तथ्य सर्वविदित है कि कच्छ के महाराव लखपतसिंहजी का जब निधन हो जाता है , तब सती होनेवालियों में केवल उनकी रखैलें ही थीं ।[69] इस प्रकार हम देख सकते हैं कि मध्यकाल तक वेश्याओं का समाज में एक ××× विशिष्ट रुतबा था और उनकी शानो-शौकत कई बार कुछेक के लिए हसद का सबब हो सकती थी । पर अब इसमें से कला तत्व

का छेद उड़ गया है, गुणों और शील की बादबाकी हो गई हैं। अब यह केवल जिस्मफरोशी का एक व्यवसाय हो गया है। बाजारू भाषा में अब उसे "धंधे पर बैठना" कहा जाता है।

यह वणिक-युग है। व्यापार का जमाना है। अब सबकुछ अर्थ के पलड़े में तौला-परखा जाता है। इस संदर्भ में कुसुम मित्तल का निम्नलिखित मंतव्य गौरतलब होगा —

" कालान्तर में वेश्याओं की स्थिति निम्न से निम्नतर होती गई। वे रुपया कमाने का एक साधन-मात्र बन गईं। औरतों की निम्न सामाजिक व आर्थिक स्थिति का लाभ उठाकर निरीह बालिकाओं, युवतियों, औरतों को धोखे से या जबरदस्ती इस धंधे में ढकेल दिया गया। धर्म के नाम पर देवदासी प्रथा का दुरुपयोग कर देवदासियों को नगरों व बड़े शहरों में वेश्यावृत्ति करने के लिए मजबूर कर दिया गया। वेश्याओं का यह वर्ग गरीब, बेसहारा और अशिक्षित बालिकाओं, युवतियों, औरतों का है। अक्सर रोजगार और शादी के नाम पर भोली-भाली ग्रामीण, पिछड़े वर्ग व आदिवासी लड़कियों को दलालों द्वारा पैसे व लालच में वेश्याओं के कोठों तक पहुंचा दिया जाता है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की 1997 की रिपोर्ट के अनुसार दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, चेन्नई, बंगलोर और हैदराबाद में 25000 बच्चियां वेश्यावृत्ति में संलग्न हैं। यूनीसेफ की एक रिपोर्ट के अनुसार प्रतिवर्ष लगभग 5000 से 7000 नेपाली लड़कियां वेश्यावृत्ति के लिए भारत लाई जाती हैं। 1995 के चतुर्थ (बीजिंग) विश्व महिला कांग्रेस में बताया गया कि प्रतिवर्ष मुम्बई के वेश्यालयों में 200 देवदासियां बेची जाती हैं।" 70

इसी लेख में आगे कहा गया है —" इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में यौन व्यापार का एक नया रूप उभर कर सामने आया है, जिसमें मध्यम वर्ग युवतियां और महिलाएं संलग्न हैं। यह गरीब, बेसहारा, निरक्षर या धोखे से इस धंधे में फंसाई गयीं औरतें नहीं है। ये महिलाएं या "काल गर्ल" पढ़ी-लिखीं व संपन्न परिवारों से हैं। इनमें से कुछ

कार्यशील महिलाएं भी हैं । इस वर्ष (2004) अकेले दिल्ली में 295 महिलाओं को पुलिस द्वारा जो इस धंधे में कार्यरत हैं पकड़ा गया है, जिनमें से 70 प्रतिशत महिलाएं संपन्न परिवारों से संबंध रखती हैं । यह महिलाएं पांच सितारा होटलों, गेस्ट हाउसों से अपना व्यवसाय चलाती हैं जो "काल गर्ल" प्रदान ~~करती~~ करते हैं । मुंबई में बार तथा पब में पुलिस छापों के द्वारा देह व्यापार में लगीं युवतियों को पकड़ा गया है ।" 71

यहां सवाल यह पैदा होता है कि वे कौन-से कारण या मजबूरियां हैं जो बड़ी संख्या में युवतियों और महिलाओं को स्वच्छा से इस व्यवसाय की ओर प्रेरित कर रहे हैं ? इसके उत्तर के लिए हमें हमारे वर्तमान सामाजिक परिवेश पर एक दृष्टिपात करना होगा । सामाजिक-नैतिक मूल्यों में तीव्र गति से परिवर्तन आ रहे हैं । कौमार्य, पति-पत्नी के बीच निष्ठा, नैतिक मूल्य और चरित्र की परिभाषा आदि मुद्दों के संदर्भ में पुराने नैतिक मूल्यों का विघटन हो रहा है । उदारीकरण, वैश्वीकरण, मुक्त-व्यापार, उपभोक्ता-संस्कृति आदि के कारण लोगों का दृष्टिकोण निहायत भौतिकवादी होता जा रहा है । "बाप बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपैया" का सिद्धान्त चारों तरफ चल रहा है । परिवारों में कम्प्यूटर, इण्टरनेट, नेट कैफे, केबल टी.वी. और सेल-फोन की सुविधाओं ने युवावर्ग को अश्लील चित्रों और व्यवहार के खुले अवसर प्रदान किए हैं । टिकाऊ वस्तुओं की खरीद के लिए आसान ऋणों की उपलब्धि ने उपभोक्तावादी महत्वाकांक्षा को आसमान की ऊंचाइयों पर पहुंचा दिया है । परिणामस्वरूप आर्थिक असहायता नहीं, बल्कि आसानी से शीघ्र पैसा कमाने के लिए आधुनिक युवक-युवतियां देह-व्यापार के धंधे से जुड़ रहे हैं । "दिल्ली पुलिस की एक रिपोर्ट के अनुसार देह व्यापार में लगीं ये युवतियां दस हजार से लेकर अस्सी हजार प्रति ग्राहक पैसा लेती हैं । कुछ युवतियां तो केवल ~~xx~~ सप्ताहांत ~~xx~~ (Week-End) पर ही व्यापार करके पचास हजार से लेकर एक लाख रूपये प्रतिमाह अर्जित कर लेती हैं । अनुमान है कि अकेले दिल्ली में इस व्यवसाय का प्रतिवर्ष टर्न ओवर पांच सौ करोड़ रूपयों का है ।" 72

इधर स्वाधीनता के उपरान्त भ्रष्ट राजनीतिज्ञ तथा रिश्वतखोर नौकरशाह और पुलिस की सांठगांठ से एक नया वर्ग उभरकर आया है। जिसे अर्थशास्त्र की भाषा में "नवधनिक वर्ग" (Neo-Capitialist) कहा जाता है। इस वर्ग के पास बहुत कम समय में बेशुमार दौलत आ गयी है। अभी डेढ़-दो साल पहले गुजरात के समाचार पत्रों में कामई चौहाण नामक एक पी.एस. आई., की चर्चा आती थी, जिसके पास लगभग 250 करोड़ रूपयों की प्रोपर्टी थी। ऐसे लोगों के पास दौलत तो बेहिसाब और बेशुमार होती है, पर संस्कारिता का एक छिंटा तक उनके पास नहीं होता। अभी कुछ महीनों पहले एक राजनीतिक पार्टी के ~~बड़े~~xxxx एक बड़े बाप का बड़ा बेटा ड्रग और शराब पार्टी में पकड़ा गया था। यह मामला तो तब सामने आया जब उनमें से एक की मौत ओवर-ड्रगिंग के कारण हो गयी। आश्चर्य की बात तो यह है कि उसके दूसरे दिन ये लोग गया मृत पिता की अस्थियों के विसर्जन के लिए जाने वाले थे। ऐसी पार्टियों में क्या कुछ नहीं चलता ? सुरा के साथ सुंदरी का तो चोली-दामन का साथ है।

अभी एक साल पहले xxxxxxx (सन् 2005) ऐसे ही एक राजनीतिज्ञ के सीडी कांड की चर्चा पूरे देश में थी। एक सुंदरी के साथ के उनके यौन-संबंधों ~~का~~x का कच्चा चिट्ठा उसमें खोला गया था। बरसों पहले डा. वार्ड ने क्रिस्टाइन किलर नामक एक विश्व-सुंदरी के साथ के विश्व के कई मांधाताओं के फोटो खींचने का एक षडयंत्र रचा था। लीला-कक्ष में इस तरह कैमेरे फिक्स किए थे कि किसीको पता ही न चले। तंदूरी काण्ड, नैना साहनी काण्ड, सरला शर्मा की रहस्यमय मौत, मधुमिता तथा अमरमणि काण्ड जैसी घटनाएं किस बात का इशारा करती हैं ?

माडल, टी.वी. स्टार, फिल्म-स्टार आदि बनने की लालच में कई सुंदर-सेक्सी लड़कियां केवल "कालगर्ल" बनकर रह जाती हैं। अभी पिछले साल (सन् 2005) तक मुंबई में "बार डान्सर्स" हुआ करती

थीं । अब उन पर बैन लगाया गया है । फिर भी चोरी-छिपे बार और पबों में यह सब चलता ही है । ये बार-गर्ल्स " भी देह-व्यापार से जुड़ती हैं । जब मुंबई के "डान्स बार " बन्द किए गए तो वहां की बहुत-सी लड़कियां बड़ौदा-अहमदाबाद वगैरह शहरों में देह-व्यापार के लिए आती थीं ।

सत्ता का नशा भी बड़ा ही खतरनाक होता है । बहुत-सी सुंदर औरतें ‖ घरेलू औरतें ‖ सांसद और विधायक और मंत्री होने की होड़ में राजनीतिक "शार्टकट " के तौर पर किसी जाने-माने , प्रतिष्ठित सत्ता-संपन्न राजनीतिज्ञ की रखैल होना पसंद करती हैं । कई बार लोगों में यह चर्चा आम होती है कि यह तो फलां-फलां मंत्री या मुख्यमंत्री की रखैल हैं और उन औरतों को भी ऐसा कहलवाने में मजा आता है । इन औरतों की बड़े-बड़े लोगों तक पहुंच होती है और उनका बड़ा "रसूख" होता है । उनके एक फोन घुमा देने पर क्यामत आ जाती है । इस वर्ग को हम चाहें तो "पोलिटिकल प्रोस्टिट्यूट्स " के वर्ग में रख सकते हैं । "नदी नहीं मुड़ती" ‖ डा. भगवतीशरण मिश्र ‖ तथा "अल्मा कबूतरी" ‖मैत्रेयी पुष्पा‖ जैसे उपन्यासों में हमें इसका चित्रण मिलता है ।

है धर्म के नाम पर देह का व्यापार तो आदि-अनादि काल से चल रहा है । "देवदासियाँ " धार्मिक "वेश्याएं" नहीं तो और क्या हैं ? इसके अतिरिक्त इन धर्म-गुरुओं , सन्तों-महन्तों ‖ तथाकथित ‖ और साधुओं के पास ऊंचे संपन्न घरानों की सुंदर महिलाएं अलग-अलग हेतुओं से आती हैं और उनके साथ उनके यौन-संबंध होते हैं । कुछ आश्रमों में सधुआइनें होती हैं और उनका प्रयोग धार्मिक आश्रम और मठ के सरताज अपनी सत्ता को बढ़ाने के लिए करते हैं और ऐसे आश्रमों में जो भी बड़े मेहमान ‖Distinguished guest‖ आते हैं , उनको इन सधुआइनों द्वारा " एण्टरटेइन " किया जाता है । ऐसे मेहमानों में राजनीतिज्ञ , बड़े-बड़े व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के मालिक , बड़े नौकरशाह आदि होते हैं । नागार्जुन कृत "इमरतिया" उपन्यास में इसकी कलई खोली गई है ।

कुछ बड़े लोगों को , विशेषकर पूर्व-चर्चित नवधनिक वर्ग के लोगों को "घर का खाना " पसंद नहीं आता , अतः वे प्रायः बाहर मुंह मारते रहते हैं । फलतः उनकी सेठानियां भी अपनी यौन-तृप्ति के लिए नये-नये रास्ते तलाशती रहती हैं । इनके अपने-अपने संसार होते हैं । माली , धोबी , नौकर , गाड़ीवान , पुजारी-पुरोहित , साधु-संत आदि सब उनकी यौन-क्षुधा के क्षेत्र में आ जाते हैं । यह यौन-तृप्ति उनको क्रमशः यौन-अतृप्ति की ओर ले जाती है और ऐसी औरतें कई बार "विपुलवासनावती" (Nympho) स्त्रियों में बदल जाती हैं । "कबूतरखाना" , " किस्सा नर्मदाबेन गंबूबाई " , "हर हाईनेस " प्रभृति उपन्यासों में हमें इसका यथार्थ चित्रण उपलब्ध होता है ।

इनमें से कुछ प्रवृत्तियां तो पहले से ही विद्यमान हैं । वात्स्यायन कामसूत्र में छठे अध्याय के अन्तर्गत " अन्तःपुर की रानियों द्वारा वासना-पूर्ति के उपाय " , " अन्तःपुर में प्रच्छन्न नायक की प्रवेश विधियां" "अन्तःपुर में परपुरुष से संभोग की कुछ स्थानीय परंपराएं " जैसे कुछ प्रकरण दिए गए हैं जो इस बात के प्रमाण हैं ।[73] एक उदाहरण प्रस्तुत है — " सापसारं तु प्रमदवनावगाढं विभक्तदीर्घकक्ष्यमल्पप्रमत्तरक्षकं प्रोषितराजकं कारणानि समीक्ष्य बहुशः आहूयमानो थैबुद्धया कक्ष्याप्रवेशं च दृष्टा ताभिरेव विहितोपायः प्रविशेत् ।"[74] अर्थात् नागरक उसी हालत में रनिवास में जाने को प्रस्तुत हो जब भाग निकलने का रास्ता हो , रनिवास से लगा हुआ प्रमद वन हो , अलग-अलग बड़ी और लम्बी-लम्बी दालानें हों , रक्षक और घोड़े असावधान हों , राजा बाहर गए हों , कई बार महारानी बुला चुकी हों , अर्थलाभ का विश्वास हो और रानी के कक्ष में प्रवेश करते समय रास्ता बताने वाली साथ हों । जब एक-एक राजा के कई-कई रानियां और रखैलें होंगी तो दूसरा क्या हो सकता है ? इस प्रकार के पुरुषों की चर्चा हम आगामी अध्याय में "पुरुष-वेश्या" (Male -Prostitute) शीर्षक के अन्तर्गत करेंगे । किन्तु इस प्रकार से अनेक पुरुषों से संभोग कराने वाली स्त्रियों को वेश्या की जो परंपरागत परिभाषा है उसके अनुसार तो वेश्या ही

कहा जायेगा । हां , इसमें अर्थलाभ उनको न होकर पुरूषों को होगा । यह बात थोड़ी भिन्न पड़ती है ।

इस प्रकार यह प्राचीनतम व्यवसाय आज भी पूरी तरह से चल रहा है । बेशक उसके रूप में थोड़ा परिवर्तन हुआ है । आधुनिक परिवेश ने उसको नये-नये रूप और नाम दिए हैं ।

xनिष्कर्षx

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजतया पहुंच सकते हैं :-

§1§ उपन्यास एक यथार्थधर्मा विधा है । यथार्थवाद का सीधा सरोकार मानव-समाज और उसकी समस्याओं से होता है । फलतः उपन्यासों में कोई-न-कोई मानवीय समस्या का आकलन तो होता ही है ।

§2§ उपन्यास की लगभग तमाम-तमाम परिभाषाएं उसके यथार्थवादी होने का संकेत देती हैं । उनमें यथार्थधर्मिता पर किसी-न-किसी रूप में तवज्जो दी गई है ।

§3§ उपन्यास की कथावस्तु में मौलिकता या नवीनता का गुण अपेक्षित है और यह मौलिकता या नवीनता नवीन समस्या के साथ समुपस्थित होती है । अतः समाज में जब-जब नवीन प्रकार की समस्याएं पैदा हुई हैं , उन्होंने नये-नये उपन्यासों को जन्म दिया है ।

§4§ युगबोध का भी मानवीय समस्याओं से गहरा नाता है ।

§5§ वेश्या समस्या भी एक मानवीय समस्या है । अतः हमें अनेक उपन्यासों में इस समस्या का विवेचन मिलता है ।

§6§ हिन्दी उपन्यास के विभिन्न सोपानों में तीन मुख्य हैं — §क§ पूर्व-प्रेमचन्दकाल / सन् 1878-1918 / , §ख§ प्रेमचन्द-काल / 1918-1936 / , §ग§ प्रेमचन्दोत्तरकाल / 1936- अद्यावधि / ।

§7§ प्रेमचन्दोत्तरकाल को पुनः चार सोपानों में विभक्त किया गया है —/1/ स्वतंत्रता-पूर्वकाल § सन् 1936-1947 § ; /2/ स्वातंत्र्योत्तरकाल § सन् 1947-1960 § ; /3/ साठोत्तरी काल §1961-1980 § ; और /4/ समकालीन उपन्यास § सन् 1980- अद्यावधि ।

§8§ पूर्व-प्रेमचन्दकाल का उपन्यास अपरिपक्व एवं चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अत्यंत कमजोर उपन्यास है । उसमें हमें पांच प्रकार की औपन्यासिक प्रवृत्तियां मिलती हैं --1. सामाजिक उपन्यास , 2. ऐतिहासिक उपन्यास , 3. जासूसी उपन्यास , 4. तिलस्मी उपन्यास और अनूदित उपन्यास । इनमें से जासूसी और तिलस्मी उपन्यासों को साहित्यिक और स्तरीय नहीं माना गया , अतः बाद के कालों में उनका उल्लेख न के बराबर हुआ है । अनूदित उपन्यास स्तरीय व साहित्यिक होते हैं , किन्तु वे उपन्यास अपनी मूल भाषा की धरोहर समझे जाते हैं ।

§9§ हिन्दी उपन्यास को उसका वास्तविक गौरव मुंशी प्रेमचन्द द्वारा प्राप्त हुआ । प्रेमचन्दजी ने समस्यामूलक सामाजिक उपन्यासों को प्राधान्य दिया है । उनके उपन्यासों में मानवीय सरोकार और मानवीय समस्याओं का निरूपण ही प्रधान हो जाता है । मानव-चरित्र की सर्वप्रथम पहचान हमें प्रेमचन्द कराते हैं ।

§10§ प्रेमचन्दकाल में हमें मुख्यतया दो प्रकार के उपन्यास मिलते हैं — 1. सामाजिक समस्यामूलक उपन्यास और 2. ऐतिहासिक उपन्यास । पूर्व-प्रेमचन्दकाल में जो ऐतिहासिक उपन्यास मिलते हैं उनको ऐतिहासिक उपन्यास न कहकर ऐतिहासिक-रम्याख्यान §

§ कहना अधिक उचित होगा । वास्तविक सामाजिक उपन्यासों की भांति वास्तविक ऐतिहासिक उपन्यासों का सूत्रपात भी प्रेमचन्दयुग में ही हुआ । इसमें वृन्दावनलाल वर्मा और आचार्य चतुरसेन शास्त्री के नाम उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं ।

§11§ प्रेमचन्दोत्तरकाल में हमें कई औपन्यासिक प्रवृत्तियां उपलब्ध होती हैं , जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं — 1. सामाजिक

उपन्यास, 2. ऐतिहासिक उपन्यास, 3. मनोवैज्ञानिक उपन्यास, 4. समाजवादी उपन्यास, 5. राजनीतिक उपन्यास, 6. आंचलिक उपन्यास, 7. पौराणिक उपन्यास, 8. व्यंग्यात्मक उपन्यास आदि-आदि ।

§12§ स्वतंत्रापूर्व के उपन्यास, स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास, साठोत्तरी उपन्यास और समकालीन उपन्यास आदि में उपन्यास के साथ एक काल-विषयक अवधारणा जुड़ी हुई है । किन्तु एक बात सभी में सामान्य है । उपर्युक्त सभी काल के उपन्यासों में हमें हमारी आलोच्य समस्या — वेश्या समस्या — का समुचित आकलन मिलता है ।

§13§ वेश्या का यह व्यवसाय आदि-अनादि काल से चल रहा है । विवाह-संस्था के स्थापित होने के बाद से देह का यह व्यापार हमें दृष्टिगोचर हो रहा है । प्राचीन साहित्य के अनेक ग्रन्थों में हमें वेश्याओं का वर्णन मिलता है । वात्स्यायन कामसूत्र के सात अध्याय है । उसमें पंचम और षष्ठ अध्याय में वेश्याओं पर विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है । नायिका-भेद प्रकरण में भी भी वेश्या का उल्लेख एक नायिका के रूप में हुआ है ।

§14§ प्राचीन एवं मध्यकाल में वेश्याओं को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था । वेश्या-समाज समाज का एक आवश्यक अंग माना जाता था । वेश्याओं में अनेक गुण एवं कलाओं का समावेश हमें उपलब्ध होता है । किन्तु आधुनिक काल में बदलते परिवेश के कारण वेश्या-जीवन के भी नाना आयाम हमारे सामने आये हैं । अब उनमें से गुणों और कलाओं का छेद उड़ गया है । वह केवल जिस्मफरोशी का व्यवसाय मात्र बन गया है ।

§15§ एक तरफ जहां दरिद्रता एवं असहायता के कारण निर्दोष-निरीह लड़कियां वेश्याएं हो रही हैं, या उन्हें दलालों द्वारा वेश्याएं बनाया जा रहा है, वहां उच्चवर्गीय एवं उच्च-मध्यवर्गीय महिलाएं एवं ~~लड़क~~ लड़कियां भौतिक सुखों की उपलब्धि के कारण स्वेच्छा से इस व्यवसाय में आ रही हैं ।

==== XXXXX ======

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ द्रष्टव्य : "परख" उपन्यास की भूमिका : जैनेन्द्रकुमार ।

§2§ द्रष्टव्य : "उपन्यास" शीर्षक लेख : साहित्य-संदेश : मार्च-1940 ।

§3§ धरती धन न अपना : जगदीशचन्द्र : पृ. 231 ।

§4§ वही : पृ. 163 ।

§5§ न्यू इंग्लिश डिक्शनरी , सी - नावेल ।

§6§ द नोवेल एण्ड द पिपुल : राल्फ फोक्स : पृ. 20 ।

§7§ प्रो. हर्बर्ट जे. मुलर : उद्धृत द्वारा डा. पारूकान्त देसाई : समीक्षायण : पृ. 115 ।

§8§ हेनरी जेइम्स : उद्धृत द्वारा डा. पारूकान्त देसाई : समीक्षायण : पृ. 115 ।

§9§ द्रष्टव्य : समीक्षायण : पृ. 122 ।

§10§ साहित्यालोचन : डा. श्यामसुंदरदास : पृ. 135 ।

§11§ कुछ विचार : प्रेमचन्द : पृ. 46 ।

§12§ काव्य के रूप : डा. गुलाबराय : पृ. 155 ।

§13§ हिन्दी साहित्यकोश भाग-1 : पृ. 153 ।

§14§ आधुनिक साहित्य : आचार्य नंददुलारे वाजपेयी : पृ. 173 ।

§15§ "उपन्यास" शीर्षक लेख : साहित्य-संदेश : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : मार्च - 1940 ।

§16§ हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डा. एस.एन. गणेशन : पृ. 29 ।

§17§ त्यागपत्र : जैनेन्द्रकुमार : पृ. 24 ।

§18§ वही : पृ. 63 ।

§19§ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : डा. त्रिभुवनसिंह : पृ. 83 ।

§20§ समीक्षायण : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 115 ।

§21§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 40 ।

(22) द्रष्टव्य : विवेक के रंग : सं. डा. देवीशंकर अवस्थी : पृ. 181 ।

(23) उद्धृत द्वारा : डा. सुरेश जोशी : कथोपकथन : पृ. 5-6 ।

(24) हिन्दी साहित्यकोश भाग-1 : पृ. 661 ।

(25) द्रष्टव्य : भारतीय नवलकथा (गुज.) : डा. रमणलाल जोशी : पृ. 5 से 7 ।

(26) द राइज़ आफ नावेल : ईवान वाट : पृ. 13 ।

(27) "प्रेमचन्द और जैनेन्द्र के औपन्यासिक नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन " : शोध-प्रबंध : डा. शकुन्तला द्विवेदी : पृ. 320 ।

(28) हिन्दी लघु उपन्यास : डा. घनश्याम मधुप : पृ. 177 ।

(29) हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी ~~उपन्यास~~ उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 245 ।

(30) प्रकर : संयुक्त विशेषांक - मई-जून : 1972 : पृ. 43 ।

(31) वे दिन : निर्मल वर्मा : पृ. 209 ।

(32) द्रष्टव्य : आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूपों का चित्रण : डा. मोहम्मद अज़हर ढेरीवाला : पृ. 56 ।

(33) टाइम्स आफ इण्डिया : दिनांक- 4-10-06 : पृ. 1 ।

(34) द्रष्टव्य : हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : पृ. 425 ।

(35) द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : पृ. ~~62~~ 63 ।

(36) वही : पृ. 64-65 ।

(37) " हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण " : डा. महेन्द्र चतुर्वेदी : पृ. 28

(38) द्रष्टव्य : हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : पृ. 478 ।

(39) द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : डा. भारतभूषण अग्रवाल : पृ. 94 ।

(40) लेख : प्रियंवद : इतिहास और उपन्यास : हंस-अक्तूबर-2005 : पृ. 35 ।

(41) द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास : सं. सुषमा प्रियदर्शिनी: पृ. 142 ।

§42§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डा. एस.एन. गणेशन : पृ. 58 ।

§43§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 77 ।

§44§ प्रेमचन्द और गोर्की : सं. डा. शचिरानी गुर्टू : पृ. 68 ।

§45§ द्रष्टव्य : कलम का सिपाही : अमृतराय ।

§46§ वही : पृ. 652 ।

§47§ हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : पृ. 91 ।

§48§ "हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य " : अज्ञेय : पृ. 96 ।

§49§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : पृ. 96-100 ।

§50§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 480-485 ।

§51§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 480-489 ।

§52§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 484-495 ।

§53§ द्रष्टव्य : आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 147-148 ।

§54§ हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला : डा. रोहिणी अग्रवाल : पृ. 273-277 ।

§55§ इसी शीर्षक का रामकुमार भ्रमर का उपन्यास भी है ।

§56§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : डा. त्रिभुवनसिंह : पृ. 767-770 ।

§57§ द्रष्टव्य : हंस : 2004-2005-2006 ।

§58§ द्रष्टव्य : इक्कीस कहानियाँ : सं. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ।

§59§ विमेन्स शेयर इन सोशियल कल्चर : गार्लिन स्पेन्सर : पृ. 122 ।

§60§ महाभारत : राजगोपालाचारी : पृ. 72-73 ।

§61§ द्रष्टव्य : वात्स्यायन कामसूत्र : श्री यशोधर विरचित "जयमंगला" व्याख्या सहित : हिन्दी व्याख्याकार- श्री देवदत्त शास्त्री : पृ. 159-160 ।

(62) वही : पृ. 161 ।

(63) वही : पृ. 161 ।

(64) द्रष्टव्य : वही : पृ. 161-162 ।

(65) वही : पृ. 162 ।

(66) द्रष्टव्य : वही : पृ. 162 ।

(67) द्रष्टव्य : वही : पृ. 162 ।

(68) द्रष्टव्य : हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास : डा. पारुकान्त देसाई : पृ. 47 ।

(69) द्रष्टव्य : प्रबंध : " राव लखपतसिंह : व्यक्तित्व एवं कृतित्व " डा. के.एम. शाह ।

(70) लेख : " देह-व्यापार का बदलता रूप " : सुश्री कुसुम मित्तल : वर्तमान साहित्य : नवम्बर-2004 : पृ. 49 ।

(71) वही : पृ. 49-50 ।

(72) वही : पृ. 50 ।

(73) द्रष्टव्य : वात्स्यायन कामसूत्र : "61" के अनुसार : पृ. 586-589 ।

(74) वही : पृ. 589 ।

=====XXXXXXX =======